कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास
को समर्पित

वार्षिक मूल्य : 100 रुपये

वर्ष 55 अंक : 2 | दिसम्बर 2008 | मूल्य : 10 रुपये

जनजातियां और उनका संरक्षण

उपभोक्ता कानून का ज्ञान आपकी समस्याओं का समाधान

राष्ट्रीय उपभोक्ता दिवस
24 दिसम्बर 2008

सयानी रानी की सलाह....

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के प्रावधानों की जानकारी प्राप्त करें और एक जागरुक उपभोक्ता बनें....

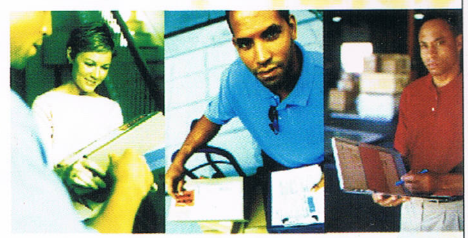

अगर सामान में खराबी या सेवा में कमी के कारण आपको हानि/क्षति हुई है अथवा किसी व्यापारी द्वारा अनुचित/प्रतिबंधात्मक पद्धति का प्रयोग हुआ है अथवा आपको हुई हानि या क्षति के लिए पर्याप्त क्षतिपूर्ति नहीं की गई अथवा आपकी शिकायत पर ध्यान नहीं दिया गया, अपने क्षेत्र के उपभोक्ता फोरम में शिकायत करने में न हिचकिचाऐं।

जागो ग्राहक जागो

शिकायत कैसे की जाए

शिकायत सादे कागज पर की जा सकती है। शिकायत में निम्नलिखित विवरण होना चाहिए:–

* शिकायत कर्ताओं तथा विपरीत पार्टी के नाम का विवरण तथा पता
* शिकायत से संबंधित तथ्य एवं यह सब कब और कहां हुआ
* शिकायत में उल्लिखित आरोपों के समर्थन में दस्तावेज
* शिकायत पर शिकायतकर्तायों अथवा उसके प्राधिकृत एजेंट के हस्ताक्षर होने चाहिए
* शिकायत दर्ज कराने के लिए किसी वकील की आवश्यकता नहीं
* नाममात्र न्यायालय शुल्क

शिकायत कहां की जाए

* यह सामान सेवाओं की लागत अथवा मांगी गई क्षतिपूर्ति पर निर्भर करता है।
* यदि यह 20 लाख रु. से कम है–जिला फोरम में
* यदि यह 20 लाख रु. से अधिक लेकिन 1 करोड़ रु. से कम है–राज्य आयोग के समक्ष
* यदि 1 करोड़ रु. से अधिक है–राष्ट्रीय आयोग के समक्ष

अपने क्षेत्र के उपभोक्ता फोरम का पता करने के लिए ncdrc.nic.in पर लॉग ऑन करें।

उपभोक्ता राष्ट्रीय हेल्पलाइन नंबर
1800–11–4000 (निःशुल्क) पर सम्पर्क कर सकते हैं।
(बीएसएनएल/एमटीएनएल लाइनों से)
अथवा 011–27662955,56,57,58 (सामान्य कॉल दरें)
(9.30 प्रातः से 5.30 सायं – सोमवार से शनिवार)

सत्यमेव जयते

उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय
उपभोक्ता मामले विभाग, भारत सरकार
कृषि भवन, नई दिल्ली–110 001 : वेबसाइट : www.fcamin.nic.in

KH-12/08/01

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 55 ★ मासिक अंक ★ पृष्ठ : 48

अग्रहायण–पौष 1930, दिसम्बर 2008

वरिष्ठ सम्पादक
कैलाश चन्द मीना

सम्पादक
ललिता खुराना

संपादकीय पत्र–व्यवहार
वरिष्ठ संपादक, कुरुक्षेत्र
कमरा नं. 655, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 23061014, 23061952
फैक्स : 011–23061014, तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
एन.सी. मजुमदार

व्यापार प्रबंधक
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516
ई–मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

आवरण एवं सज्जा
संजीव सिंह और रजनी दवे

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

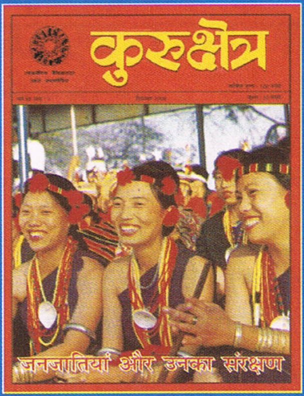

कुरुक्षेत्र

इस अंक में

बदलते परिवेश में जनजातीय समस्याएं एवं कल्याणकारी योजनाएं	अंजलि गुप्ता	3
राजस्थान की जनजातीय संस्कृति और परंपराएं	डॉ. ओ.पी.शर्मा	8
सहरिया जनजाति का शैक्षिक विकास कार्यक्रम एवं समस्याएं	लालकृष्ण शर्मा	12
जनजातियों का बहुआयामी स्वरूप	डॉ. जगबीर कौशिक	16
विकास की राह पर जनजातीय समाज	भरत कुमार दुबे	20
जनजातीय उपयोजना	डॉ. बद्री बिशाल त्रिपाठी	24
झारखंड की आदिम जनजातियां: एक अवलोकन	डॉ. अमर कुमार चौधरी व चित्रलेखा सिन्हा	29
जनजातियों का विकास और सरकारी प्रयास	डॉ. नीरज कुमार गौतम	34
जनजाति कल्याण: नीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था	डॉ. एस.के. कटारिया	39
बहुउपयोगी मेथी की खेती	डॉ. मदन पाल	42
सफलता की कहानी	घनश्याम वर्मा	47

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

संपादकीय

जनजातियों की अपनी विशिष्ट पहचान है। हमारे देश में जनजातियों की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत है। किंतु अधिकतर जनजातियां आज भी विकास से कोसों दूर हैं। विशेष तौर से कई आदिम जनजातियां विलुप्त होने के कगार पर हैं।

ब्रिटिश शासनकाल में आदिवासी लोगों के विकास को पूरी तरह अनदेखा किया गया। हालांकि स्वतंत्रता के बाद सरकार ने जनजातियों के विकास की ओर ध्यान दिया। संविधान में इनके लिए अनेक सुरक्षात्मक उपाय किए गए और इन्हें कानूनी संरक्षण प्रदान करते हुए देश की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया गया। इस समय सरकार के समक्ष एक तरफ तो जनजातियों के विकास का सवाल था तो दूसरी तरफ उनकी संस्कृति और परंपरा को बनाए रखने की चुनौती।

इसी के मद्देनजर पहली पंचवर्षीय योजना में 43 विशेष बहूद्देशीय जनजातीय परियोजनाएं बनाई गई। दूसरी पंचवर्षीय योजना में भी इन्हें जारी रखा गया। किंतु यह परियोजना विशेष सफल नहीं रहने पर तीसरी पंचवर्षीय योजना में जनजातीय विकास के लिए एक अलग कार्यनीति बनाई गई। इसके तहत उन सामुदायिक विकास खंडों को जनजातीय विकास खंडों(टीडीबी) में बदल दिया गया जिनमें जनजातीय जनसंख्या 66 प्रतिशत या अधिक थी। किंतु इस योजना की सबसे बड़ी सीमा यह थी कि इसमें बिखरी जनजातीय जनसंख्या वाले क्षेत्रों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाया। इसीलिए जनजातियों के सर्वांगीण विकास के लिए एक नई योजना की जरूरत महसूस की जाने लगी। 1972 में प्रसिद्ध समाजशास्त्री एस.सी. दुबे की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति गठित की गई। जिसकी सिफारिश पर पांचवीं पंचवर्षीय योजना में जनजातीय क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास के लिए जनजातीय उपयोजना शुरू की गई जो आज भी जारी है। दसवीं पंचवर्षीय योजना को रोजगार सृजित करने पर केंद्रित किया गया है।

जनजातियों के उत्थान के उद्देश्य से सरकार ने अक्तूबर 1999 से जनजातीय कार्य मंत्रालय का भी गठन किया है जिसका प्रमुख उद्देश्य अनुसूचित जनजातियों का समग्र विकास सुनिश्चित करना है। इसके अलावा जनजातीय लोगों को अपने अधिकार क्षेत्र में संबद्ध वनभूमि पर खेती करने के अधिकार दिलाने के उद्देश्य से अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वनवासी (वन अधिकारों को मान्यता) कानून 2006 को संसद में 18 दिसंबर, 2006 को पारित किया गया और इसे लागू करने के लिए 31 दिसंबर, 2007 को अधिसूचना जारी की गई। यही नहीं जनजातियों से संबद्ध सभी महत्वपूर्ण विषयों को समाहित कर राष्ट्रीय जनजातीय नीति का मसौदा भी तैयार किया गया है। केंद्रीय मंत्रिमंडल ने इसे राष्ट्रीय पुनर्वास नीति के साथ समाहित करने का सुझाव दिया है। यह नीति मंत्रियों के समूह के समक्ष विचाराधीन है।

अनुसूचित जनजातियों के लिए सरकार द्वारा किए जा रहे विविध प्रयासों के बावजूद आज भी अनुसूचित जनजातियों का मानव विकास सूचकांक शेष जनसंख्या की तुलना में बहुत ही निम्न है। उनमें शिक्षा का स्तर भी निम्न है। अपने अधिकारों की जानकारी नहीं होने के कारण उन तक इनका लाभ नहीं पहुंच पा रहा है। परिणामस्वरूप आज भी वे अपने प्राकृतिक आवास एवं भूमि से बेदखली के भय और काश्तकारी असुरक्षा के माहौल में जी रहे हैं। यही नहीं स्वास्थ्य सुविधाओं के भी लाभ उन तक नहीं पहुंच पा रहे जिसके कारण अनुसूचित जनजातियों में शिशु मृत्युदर काफी अधिक है।

संक्षेप में कहा जाए तो जनजातीय क्षेत्रों तथा जनजातियों के विकास के प्रयास तभी सार्थक होंगे जब वे शिक्षित होंगे। सरकार को चाहिए कि वे जनजातियों के विकास के साथ-साथ उनके 'समग्र विकास' पर ध्यान दें और ये कार्य उनकी स्थानीय परंपरा, हस्तशिल्प और क्षेत्रीय संसाधनों को सुरक्षित रखते हुए करना होगा तभी सही मायने में हम जनजातियों के जीवन में सकारात्मक भूमिका निभा पाएंगे। विध्वंसकारी विकास से हम केवल अपनी बहुकीमती संस्कृति को खो ही सकते हैं।

बदलते परिवेश में जनजातीय समस्याएं एवं कल्याणकारी योजनाएं

अंजलि गुप्ता

हमारे देश की संस्कृति में जनजातियों का विशेष महत्व है। वर्तमान में विभिन्न जनजातियों की जनसंख्या 9 करोड़ से भी अधिक है। लम्बी अवधि तक उपेक्षित, अविकसित रहने के कारण स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 द्वारा राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया कि उनके द्वारा किसी भी पिछड़े आदिम समुदाय को जनजाति घोषित किया जा सकता है। अनुच्छेद 365 द्वारा राष्ट्रपति राज्य के राज्यपाल के परामर्श से जनजातियों की सूची में किसी भी नई जनजाति के नाम को जोड़ने अथवा निकालने का अधिकारी है अतः अनुच्छेद 342 के अंतर्गत सूचीबद्ध जनजातियों को अनूसूचित जनजाति कहा जाता है। अनुसूचित जनजाति का निर्धारण निम्न कसौटियों के आधार पर किया जाता है :

- जिस जनजाति की उत्पत्ति किसी जनजातीय समुदाय द्वारा हुई हो।
- भौगोलिक रूप से पृथक किसी पिछड़े क्षेत्र में उसका निवास हो।
- जिसका जीवन आदिम विशेषताओं से युक्त हो।
- जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ी हुई हो।

इस आधार पर कुल जनजातियों की संख्या लगभग 840 है। जहां वर्ष 1950 में 212 जनजातियों को अनुसूचित जनजाति माना गया, वर्तमान में इनकी संख्या 541 हो चुकी है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों का अंतर केवल सरकार द्वारा स्वीकृत आर्थिक और भौगोलिक पिछड़ेपन के अंतर से ही संबंधित है।

भारत की सांस्कृतिक धरोहर जनजातियां

वैश्वीकरण और औद्योगिक एवं तकनीकी विकास ने जहां देश की अधिसंख्य जनता के लिए बेहतर जीवन और रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए हैं वहीं जनजातीय समाज विभिन्न कारकों के कारण आज भी अनेक समस्याओं से ग्रस्त है :

- अधिकाशं जनजातियां पहाड़ों, जंगलों और दूरवर्ती दुर्गम क्षेत्रों में निवास करती हैं जहां उनका अन्य लोगों से सम्पर्क नहीं हो पाता क्योंकि आवागमन के साधनों का अभाव है। अतः उन्हें जीवनयापन के उचित अवसर उपलब्ध नहीं होते हैं।
- जनजातीय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की वन सम्पदा जैसे कीमती लकड़ी, फल–फूल, जड़ी–बूटियां, चाय बागान आदि प्रचुरता में उपलब्ध हैं जिनके कारण अनेक उद्योगों का विकास हुआ किन्तु इसका दुष्प्रभाव दो रूपों में पड़ा। बाह्य लोगों–व्यापारी, महाजन, ठेकेदार, प्रशासक, पुलिस अधिकारियों के साथ समायोजन व्यवहार की समस्या तथा इनकी गरीबी, अशिक्षा का लाभ उठाकर बाह्य लोगों द्वारा इनका हर प्रकार का शोषण किया गया।
- ब्रिटिश शासन से पूर्व ये जनजातियां राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र इकाइयां थीं, वन खनिज संपदा पर इनका एकाधिकार था किन्तु अंग्रेजों द्वारा सम्पूर्ण देश में एक राजनीतिक व्यवस्था स्थापित कर जनजातियों के अधिकार सीमित कर दिए गए और प्राकृतिक सम्पदा के उपभोग पर रोक लगा दी गई। नई प्रशासनिक और न्याय व्यवस्था से संतुलन बनाने में जनजातीय समाज को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ा।
- ब्रिटिश शासनकाल में ही ईसाई मिशनरियों द्वारा उनके विकास, कल्याण के नाम पर आर्थिक प्रलोभन देकर उनका धर्म परिवर्तन कर ईसाई बनाया गया जिसके फलस्वरूप अनेक आर्थिक व परसंस्कृति ग्रहण संबंधी समस्याओं का विकास हुआ। मजूमदार तथा मदन के अनुसार भारतीय जनजातियों की अधिकांश समस्याएं उनके भौगोलिक पृथक्करण और नए सांस्कृतिक सम्पर्क का परिणाम हैं।

आर्थिक आधार पर जनजातियों की सबसे बड़ी समस्या **निर्धनता** की है जो इनके पिछड़ेपन का मुख्य कारण होने के साथ ही इनके निम्न आर्थिक स्तर के लिए भी उत्तरदायी है। निर्धनता के लिए निम्न कारण उत्तरदायी हैं– कृषि के पिछड़े तरीके, नई वन नीति, कृषि भूमि से पृथकता, दोषपूर्ण व्यवहार, अधिक जन्मदर, विकास योजनाओं का दोषपूर्ण क्रियान्वयन। दूसरी बड़ी समस्या **ऋणग्रस्तता** है। विभिन्न जनजातियों के 60 प्रतिशत से अधिक परिवार किसी न किसी रूप में ऋणग्रस्त हैं। जन्म, मृत्यु, विवाह, सामूहिक भोज जैसे अवसरों के लिए ली गई ऋणराशि द्वारा जनजातीय लोग

अपने दायित्वों को पूरा करते हैं। यद्यपि सरकार की विभिन्न संस्थाओं आई.टी.डी.ए., सहकारी समितियों, बैंकों व जनजातीय कल्याण विभाग द्वारा नाममात्र के ब्याज पर ऋण की सुविधा उपलब्ध कराई गई है किन्तु अशिक्षा–अज्ञान के कारण जनजातीय लोग अपनी जनजाति या महाजनों से ऋण लेना पंसद करते हैं। ऋणग्रस्तता के लिए निम्न कारण उत्तरदायी हैं – नई वन नीति के कारण वन सम्पदा के उपयोग से वंचित, जनजातीय कृषि भूमि का छोटा आकार व अनुपजाऊ होना, उत्पादित वस्तुओं का उचित मूल्य प्राप्त ना होना, खेतिहर, मजदूरों की संख्या में वृद्धि होना, मद्यपान व आय से अधिक खर्च करने की प्रवृत्ति, ऋण लेने के लिए सरकारी संस्थाओं की अपेक्षा स्थानीय महाजनों पर निर्भरता।

ऋणग्रस्तता की समस्या के कारण जनजातीय समाज का निरंतर विघटन हो रहा है क्योंकि गरीबी के कारण उचित मात्रा में भोजन का अभाव अनेक रोगों को जन्म देता है। साथ ही चिकित्सकीय सुविधाओं का अभाव होने के कारण बच्चों को शिक्षा प्राप्त नहीं होती। बाल श्रम, बंधुआ मजदूरी और कृषि भूमि से बेदखल होने की समस्याएं निरंतर बढ़ती जा रही हैं। निर्धनता, ऋणग्रस्तता के साथ–साथ एक बड़ी समस्या **भूमि पृथक्करण** की भी है जिसका तात्पर्य है जब जनजातीय लोग लिए गए ऋण को चुका पाने में असमर्थ होते हैं तो विवश होकर स्वेच्छा से अपनी कृषि भूमि को अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित कर देते हैं। भूमि पृथक्करण की समस्या का पूर्ण अनुमान उपलब्ध नहीं है किन्तु राजस्थान एवं गुजरात में आधी से अधिक जनजातीय कृषि भूमि गैर–जातीय समूहों के स्वामित्व में आ चुकी है। इस समस्या के लिए निम्न कारण उत्तरदायी हैं – बाहय स्वार्थी लोगों द्वारा अपनी आर्थिक शक्ति के बल पर व छलकपट द्वारा इनकी विवशता का लाभ उठाकर इनकी भूमि पर कब्जा करना है, भूमि हस्तान्तरण संबंधी दोषपूर्ण कानून, गरीबी, अशिक्षा और अज्ञान, मद्यपान की परम्परा, विकास कार्यक्रमों से लाभ की अपेक्षा दुष्प्रभाव, विकास हेतु ली गई कृषि भूमि के मुआवजे में प्राप्त धनराशि को शराब और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति आदि में खर्च किया जाना है।

जनजातीय समाज अनेक **सांस्कृतिक समस्याओं** से भी ग्रस्त है यथा सांस्कृतिक विघटन की समस्या, परसंस्कृति ग्रहण के कारण अभियोजन अनुकूलन की समस्या, भाषा की समस्या, जनजातीय धर्म के प्रति उदासीनता की प्रवृत्ति, परस्पर ऊंच–नीच की प्रवृत्ति, लोककलाओं का पतन होने से जनजातीय सभ्यता और संस्कृति विनाश के कगार पर है।

नगरीकरण, औद्योगीकरण, बाहय लोगों के सम्पर्क के कारण जनजातीय समाज निम्न सामाजिक समस्याओं से जूझ रहा है – पारिवारिक विघटन की समस्या, बाल विवाह की प्रवृत्ति, नैतिक पतन, मद्यपान की प्रवृत्ति का विकास, सामूहिक जीवन में गतिरोध, स्त्रियों की स्थिति में ह्रास, युवा गृह जैसी संस्थाओं के महत्व में कमी। निर्धनता के कारण उचित पौष्टिक आहार का अभाव, आवश्यक सुविधाओं की कमी के कारण गंदगी की समस्या, अंधविश्वास और परम्पराओं के कारण शिक्षा के प्रति कम रुझान तथा जनसंख्या का अधिक बढ़ना।

भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को प्रोत्साहन देने तथा सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिए संरक्षण की निम्न व्यवस्थाएं की गई हैं :–

- अनुसूचित जनजातियों के शैक्षणिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा की जाए और इन्हें सभी प्रकार के शोषण तथा सामाजिक अन्याय से बचाया जाए। (अनुच्छेद 46) ।
- सरकार द्वारा संचालित अथवा सरकारी कोष से सहायता पाने वाले शिक्षालयों में उनके प्रवेश पर कोई रुकावट न रखी जाए। (अनुच्छेद 29–2) ।
- दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों का उपयोग करने पर लगी रुकावटें हटाई जाएं, जिनका पूरा या कुछ व्यय सरकार उठाती है अथवा जो जनसाधारण के निमित्त समर्पित हैं (अनुच्छेद 15), (2)।
- हिन्दुओं के सार्वजनिक स्थानों के द्वार कानूनन समस्त हिन्दुओं के लिए खोल दिए जाएं (अनुच्छेद 25 ख) ।
- लोकसभा तथा राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधियों के लिए जनसख्या के आधार पर निश्चित सीटें सुरक्षित कर दी जाएं। (अनुच्छेद 324, 330 तथा 342)।
- यदि सार्वजनिक सेवाओं या सरकारी नौकरियों में जनजातीय लोगों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हो, तो सरकार को उनके लिए स्थान सुरक्षित रखने का अधिकार देना और सरकारी नौकरियों में नियुक्तियों के समय अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावों पर विचार करना (अनुच्छेद 16 और 335)।
- जनजातियों के कल्याण तथा हितों के प्रयोजन से राज्यों में जनजाति सलाहकार परिषदों तथा पृथक विभागों की स्थापना की जाए और केन्द्र में एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की जाए। (अनुच्छेद 164, 338 तथा पांचवीं अनुसूची)।
- अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों के प्रशासन तथा नियन्त्रण के लिए विशेष व्यवस्था की जाए (अनुच्छेद 224 और पांचवीं तथा छठी अनुसूचियां)।

- अनुच्छेद 244 (2) के अनुसार असम की जनजातियों के लिए जिला और प्रादेशिक परिषद् स्थापित करने का विधान है। आर्थिक हितों की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान देना राज्य का कर्त्तव्य माना गया है।
- अनुसूचित जनजातियों के हित में भारत में स्वतन्त्रतापूर्वक आने–जाने, रहने और बसने तथा सम्पत्ति खरीदने, रखने और बेचने के आम अधिकारों पर राज्य द्वारा उचित प्रतिबंध लगा सकने की कानूनी व्यवस्था (अनुच्छेद 19–5)।
- मनुष्य के देह व्यापार और जबरन मजबूरी पर प्रतिबंध लगाया जाए (अनुच्छेद 25)।

अनुसूचित जनजातियों पर अत्याचार रोकने के लिए उपाय

अनुसूचित जनजातियों पर होने वाले अत्याचारों को कारगर ढंग से रोकने के लिए राज्य सरकारों को एहतियाती, निवारक, दण्डात्मक तथा पुनर्वास उपायों और प्रशासनिक कदमों के बारे में मार्गनिर्देश दिए गए हैं। इन्हें राज्यों और संघीय क्षेत्रों में लागू करना होता है। तथापि इन जातियों को अत्याचारों से पूरी तरह बचाने के लिए सरकार ने अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, 1989 बनाया जो 30 जनवरी, 1990 से लागू हो गया है।

कानून में दिए गए प्रावधानों के अनुसार आन्ध्र प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, कर्नाटक और तमिलनाडु में विशेष अदालतें गठित की जा चुकी हैं। अन्य राज्यों में भी इस प्रकार की अदालतें गठित करने की प्रक्रिया चल रही है।

इस कानून को लागू करने के लिए केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के तहत इसका आधा खर्च राज्य सरकारें और आधा खर्च केन्द्र उठाता है तथा केन्द्रशासित प्रदेशों को इसका पूरा खर्च दिया जाता है।

अनुसूचित जनजातियों पर होने वाले अत्याचारों को रोकने, उनके सामाजिक व आर्थिक विकास हेतु तथा नई नीतियों की समीक्षार्थ (89 वां संशोधन) 2003 के माध्यम से अनुच्छेद 338 में संशोधन करके, नए अनुच्छेद 338 (क) का समावेश करके 19 फरवरी, 2004 से राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना की गई है जिसके अध्यक्ष श्री सूरज भान, उपाध्यक्ष श्री फकीर भाई बाधेला व 5 अन्य सदस्य हैं।

आयोग के प्रमुख कार्य : अनुसूचित जनजातियों की दी गई सुरक्षा संबंधी सभी मामलों की जांच पड़ताल करना और मॉनीटरिंग, सुरक्षा उपायों के क्रियान्वयन का मूल्यांकन और सम्पत्ति शिकायतों की जांच करना है। आयोग का मुख्यालय दिल्ली में स्थित है और 6 क्षेत्रीय कार्यालय भोपाल, भुवनेश्वर, जयपुर, रायपुर, रांची और शिलांग मे स्थित हैं।

उपरोक्त कार्यों के सुचारू संचालन हेतु आयोग द्वारा और अधिक प्रबल नीति व दृष्टिकोण अपनाया गया है। आयोग की बैठक समय–समय पर नियमित रूप से सम्पन्न होती है और लिए गए निर्णयों के क्रियान्वयन पर भी नजर रखी जाती है। विकास संबंधी योजनाओं के मूल्यांकन हेतु आयोग द्वारा संबंधित राज्यों / केन्द्र शासित प्रदेशों का भ्रमण व इन क्षेत्रों के मुख्य सचिवों के साथ मीटिंग आयोजित की जाती है जिससे आवश्यक सहायता उपलब्ध हो सके और विकास का लाभ पहुंच सके। आयोग सिविल न्यायालय के रूप में सम्मन भेजकर अपने समक्ष उपस्थिति अनिवार्य बना सकता है। केन्द्र राज्य व केन्द्रशासित प्रदेशों से आयोग नीति नियोजन के स्तर पर संबद्ध रहता है ताकि उचित नियोजन और क्रियान्वयन द्वारा अनुसूचित जाति / जनजाति के सदस्यों का विकास हो और उन्हें शेष जनसंख्या के साथ जोड़ा जा सके। आयोग द्वारा 12 मार्च, 1992 से 19 फरवरी, 2004 तक 7 वार्षिक और 4 विशेष रिपोर्ट राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत की गई हैं।

जनजातीय कला–शिल्प, परम्पराओं और संस्कृति के संरक्षण और प्रचार संबंधी परियोजनाओं हेतु विभिन्न अनुदानों का प्रावधान सरकारी स्तर पर किया गया है। 15 दिसम्बर, 2006 को संसद द्वारा वन अधिकारों की मान्यता संबंधी विधेयक पारित कर वनों पर आधारित जनजातियों के अक्षुण्ण अधिकार को

कृषि के परम्परागत तरीके जनजातियों की गरीबी का मुख्य कारण

स्वीकृत कर लिया गया। देश में विद्यमान वन ग्रामों की संख्या निम्नवत है :–

असम – 499, छत्तीसगढ़ – 421, गुजरात – 194, झारखण्ड – 24, महाराष्ट्र – 73, मेघालय – 22, मध्य प्रदेश – 925, मिजोरम – 85, उड़ीसा – 20, त्रिपुरा – 96, उत्तराखण्ड – 142, उत्तर प्रदेश – 19, पश्चिम बंगाल – 170, वन संरक्षण अधिनियम 1980 लागू होने के बाद हरे पेड़ों के कटने पर प्रतिबंध होने के कारण वन सम्पदा पर आश्रित जनजातीय लोगों के रोजगार अवसरों में कटौती होने के कारण इनकी आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय हो गई। अतः सरकार को वन निवासी विधेयक पारित करना पड़ा। वर्ष 2007–08 के दौरान वन्य ग्रामों के विकास हेतु 150 करोड़ रुपये की धनराशि सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई है।

राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम के अन्तर्गत आदिवासियों एवं दलितों के लिए, राज्यों की सहायतार्थ 100 प्रतिशत वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए वर्ष 2005–06 से विशेष कार्यक्रम लघु सिंचाई योजनाओं के लिए प्रारम्भ किया गया है।

जनजातीय छात्र–छात्राओं की शिक्षा में अभिवृद्धि के लिए निम्न योजनाएं चल रही हैं :–

सेवाओं में आरक्षण – संविधान के अनुच्छेद 335 में यह व्यवस्था है कि केन्द्र अथवा राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में पदों तथा सेवाओं के लिए नियुक्ति करते समय प्रशासनिक कुशलता को बनाए रखते हुए अनुसूचित जनजातियों के दावों पर विचार किया जाएगा। अखिल भारतीय आधार पर खुली प्रतियोगिता के द्वारा भर्ती वाले स्थानों तथा अखिल भारतीय स्तर पर किसी अन्य तरीके से की जाने वाली भर्ती वाले स्थानों में (दोनों के) 7.5 प्रतिशत स्थान अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित हैं। राज्य में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित किए जाते हैं। सेवाओं में आरक्षण की दृष्टि से इन्हें निम्नांकित रियायतें दी जाती हैं –

- आयु सीमा में छूट।
- उपयुक्तता के मानदण्डों में छूट।
- पदों के लिए चयन, बशर्ते कि वे अनुपयुक्त न पाए जाएं।
- जहां कहीं आवश्यक हो, अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों के लिए अनुभव सम्बन्धी योग्यताओं में छूट।
- अनुसंधान के लिए अपेक्षित समूह 'क' की सबसे निचली श्रेणी के वैज्ञानिक तथा तकनीकी पदों को भी आरक्षण योजना में सम्मिलित किया जाना।

आरक्षित पदों की भर्ती हेतु संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार द्वारा वर्ष 2006 की समाप्ति तक लगभग 50,000 रिक्त पदों पर नियुक्तियां की गई हैं।

उच्चतम न्यायालय ने 10 अप्रैल, 2008 को दिए अपने निर्णय में क्रीमी लेयर को आरक्षण के लाभ से वंचित करते हुए भारतीय प्रौद्योगिकीय संस्थानों, भारतीय प्रबंधकीय संस्थानों व सरकारी सहायता प्राप्त अन्य केन्द्रीय शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश में अन्य पिछड़े वर्गों को 27 प्रतिशत आरक्षण प्रदान करने वाले 93वें संविधान संशोधन अधिनियम को संवैधानिक रूप से सही ठहराया है जिसके फलस्वरूप अधिनियम 2006 के इसी शैक्षणिक सत्र से कार्यान्वयन का मार्ग प्रशस्त हो गया है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के निर्देशन में जवाहर नवोदय विद्यालयों में प्रवेश हेतु अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिये संबंधित जिले की जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जाति हेतु 15 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति हेतु 7.5 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत से कम न रखते हुए सीटें आरक्षित की जाती हैं। जुलाई, 2004 से कस्तूरबा गांधी बालिका योजना प्रमुखतया अनुसूचित जाति /अनुसूचित जनजाति व अन्य पिछड़े वर्गों तथा अल्पसंख्यक समुदायों की छात्राओं के लिए उच्च प्राथमिक स्तर पर प्रारम्भ की गई है। यह योजना 1 अप्रैल, 2007 से सर्वशिक्षा अभियान के उपघटक के रूप में क्रियान्वित हो रही है। इसके अन्तर्गत स्वीकृत 2180 कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों में से 242 विद्यालय अनुसूचित जाति बहुल ब्लॉकों में स्वीकृत किए गए हैं तथा 16,750 अनुसूचित जाति की बालिकाओं को नामित किया गया है जो कुल नामांकन का 27 प्रतिशत है।

अनुसूचित जनजातीय छात्र–छात्राओं की शिक्षा सुविधाओं के विस्तार हेतु प्राईमरी स्तर से उच्च माध्यमिक स्तर तक विद्यालय भवनों का निर्माण, छात्रावास व शिक्षक क्वार्टरों का निर्माण, पुस्तकालय फर्नीचर, पुस्तकों, अन्य उपकरणों के लिए गुरुकुल परम्परा के अनुरूप आश्रम विद्यालयों की स्थापना के लिए सरकार द्वारा धनराशि 22 राज्यों व 2 संघीय क्षेत्रों में उपलब्ध करवाई जा रही है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुसूचित जनजातियों की छात्राओं में उच्च शिक्षा के विकास के लिए महिला छात्रावास के निर्माण के लिए महाविद्यालयों / विश्वविद्यालयों को विशेष वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है। संविधान के अनुच्छेद 275 (1) के अंतर्गत केन्द्र सरकार से प्राप्त अनुदानों द्वारा देश के 24 राज्यों में 100 एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालयों की स्थापना राज्य सरकारों द्वारा की गई है जिनमें कुल छात्रों की संख्या 20,424 है। दसवीं के उपरांत जनजातीय छात्रों द्वारा मध्य में पढ़ाई न छोड़ी

लोक कलाओं का धीरे–धीरे पतन हो रहा है

जाए इस उद्देश्य से अनेक छात्रवृत्ति, बुक बैंक जैसी योजनाओं के लिए जनजातीय मंत्रालय द्वारा वर्ष 2006–07 में 198.93 करोड़ रुपये की छात्रवृत्तियां उपलब्ध कराई गईं।

अनुसूचित जनजाति के छात्र–छात्राओं को व्यावसायिक व तकनीकी के साथ गैर–तकनीकी, गैर–व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विभिन्न स्तरों के लिए वित्तीय सहायता दी जा रही है। छात्रावास में रहने वाले छात्रों को 235 रुपये प्रतिमाह से लेकर 740 रुपये प्रतिमाह और गैर–आवासी छात्रों को 140 रुपये से 330 रुपये प्रति पाठ्यक्रम के अनुरूप दी जाती है। इस योजना के लाभार्थियों के अभिभावकों/संरक्षकों की वार्षिक आय 1,00,000 रुपये से अधिक नहीं होनी चाहिए।

एम. फिल और पी.एच.डी. हेतु वर्ष 2006–07 से यू.जी.सी. द्वारा मान्यता प्राप्त सभी विश्वविद्यालयों / संस्थानों के अनु0 जनजातीय छात्रों को राजीव गांधी राष्ट्रीय फैलोशिप स्कीम के अंतर्गत वित्तीय मान्यता प्रदान की जा रही है। वर्ष 2005 से 2007 तक 900 छात्रों को ऐसी अध्येता वृत्तियां प्राप्त हो चुकी हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद द्वारा औषधि विज्ञान और इंजीनियरिंग जैसे व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में पढ़ने वाले छात्रों के लिए राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परियोजना के अंतर्गत 1000 छात्रवृत्ति में से 150 छात्रवृत्तियां अनूसूचित जाति के लिए आरक्षित हैं। राष्ट्रीय मुक्त विद्यालीय शिक्षा संस्थान अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के छात्रों के प्रवेश हेतु 200 रुपये, माध्यमिक स्तरीय पाठ्यक्रम के लिए 250 रुपये तथा सीनियर सैकेण्डरी पाठ्यक्रमों के लिए 300 रु0 छूट प्रदान कर रहा है।

जनजातीय समाज द्वारा तैयार चीजों का उचित मूल्य दिलाने के उद्देश्य से अगस्त 1987 में जनजातीय सहकारी विपणन विकास परिसंघ (ट्राइफेड) की स्थापना की गई जिसने अप्रैल, 1988 से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। बीजों के निर्यात व तिलहन उत्पादों के एकत्रीकरण, प्रंसस्करण भंडारण और विकास की प्रमुख एजेंसी इसे ही बनाया गया है जो भारतीय खाद्य निगम एवं कृषि एवं सहकारिता विभाग के एजेंट रूप मे कार्य करता है।

अखिल भारतीय स्तर पर अनेक स्वयंसेवी संगठन अनुसूचित जातियों और जनजातियों के मध्य रहकर कार्यरत हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार सरकारी सहायता समय–समय पर प्रदान की जाती है।

अनुच्छेद 330 व 332 के अंतर्गत अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति जनसंख्या के अनुपात में लोकसभा के कुल 542 स्थानों में 79 स्थान अनुसूचित जाति और 40 स्थान अनुसूचित जनजाति के लिए सुरक्षित हैं। इसी प्रकार विधानसभाओं और केन्द्र शासित प्रदेशों की कुल 3,947 सीटों में से 315 स्थान आरक्षित हैं।

आदिम जाति कल्याण मंत्री द्वारा खेल, शिक्षा, संस्कृति, विज्ञान, समुदाय सेवा के क्षेत्र में वर्ष 2008 से 1 पुरस्कार 5 लाख रुपये का एवं एक पुरस्कार 3 लाख रुपये का दिए जाने की घोषणा की गई है।

सरकार द्वारा घोषित उपरोक्त प्रयास अपने लक्ष्य को सार्थक कर पाने में काफी सफल सिद्ध हुए हैं। निर्वाचित संस्थाओं में अनुसूचित जातियों/जनजातियों के प्रतिनिधित्व ने इस वर्ग के सामाजिक – आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। शिक्षा संबंधी विभिन्न सुविधाओं ने अनु. जाति/जनजाति में शिक्षा के प्रति रूचि को काफी बढ़ाया है जिससे साक्षरता दर में वृद्धि हुई है। आरक्षण सुविधाओं ने इन लोगों की सार्वजनिक जीवन में महत्ता निसंदेह बढ़ाई है तथापि अभी इस क्षेत्र में विकास के लिए सरकारी, गैर–सरकारी स्तर पर काफी कुछ किया जाना आवश्यक है।

(लेखिका वी.एम.एल. जी. कालेज, गाजियाबाद के राजनीति शास्त्र विभाग में वरिष्ठ रीडर हैं।)

ई–मेल : agrcg52@hotmail.com

राजस्थान की जनजातीय संस्कृति और परंपराएं

डॉ. ओ.पी.शर्मा

विभिन्न संस्कृतियों के 'अद्भुत अजायबघर' के नाम से पुकारी जाने वाली भारतीय संस्कृति पूर्णतः धार्मिक परंपराओं पर आधारित है। यहां की सभी संस्कृतियां प्रारंभ से ही एक–दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। संभवतः इसीलिए किसी संस्कृति विशेष का मूल स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता है। फिर भी देश की जनजातीय संस्कृतियां भौगोलिक विलग्नता के कारण विशिष्ट जीवन पद्धति, सामाजिक मर्यादा, पारिवारिक परंपरा और भाषायी विशेषताओं के आधार पर आज भी अपनी पहचान बनाए हुए हैं।

संपूर्ण राष्ट्र की भांति राजस्थान का जनजातीय समाज भी अभी तक अपने सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश के बहुमूल्य तन्तुओं को संजोये हुए है। राजस्थानी जनजातियों की बहुरंगी सांस्कृतिक धरोहर की अपनी अलग पहचान है। यहां की जनजातियों ने अपनी स्वछन्द, स्वावलंबी और स्वाभिमानी जीवनशैली की रक्षा के लिए न केवल बाह्य ताकतों से सामना किया है, बल्कि वनों तथा पहाड़ों की सुरक्षा में अपनी मूल संस्कृति और सामाजिक परंपराओं को भी सुरक्षित रखने का प्रयास किया है। पौराणिक तथा ऐतिहासिक तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि राजस्थान की जनजाति अनादिकाल से ही हिंदू धर्म की अनुयायी रही है तथा इनकी स्वाभिमानी जीवनपद्धति को अभिव्यक्त करने वाला एक गौरवपूर्ण इतिहास भी रहा है।

राजस्थान की मुख्य जनजातियों में मीणा, भील, गरासिया, सहरिया, डामोर, सांसी और कथौड़ी जातियां हैं। इनके अलावा राज्य में टावडी, जागी, भाला, बावली, ढोली, पाटवा, नेकदा, कालीघोर आदि जनजातियां भी निवास करती हैं। राजस्थान की कुल जनसंख्या 5,65,07,188 (2001 के अनुसार) का 12.56 प्रतिशत भाग (70,97,706) जनजातियों के रूप में संवैधानिक मान्यता प्राप्त कर चुका है। प्रदेश के पांच जिलों यथा उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, जयपुर और सवाई माधोपुर में राज्य की कुल जनजाति संख्या का लगभग 53 प्रतिशत भाग निवास करता है। राज्य की जनजातियों का लगभग 96 प्रतिशत भाग ग्रामीण तथा शेष 4 प्रतिशत भाग शहरी क्षेत्रों में निवास करता है। भौतिक सुख–सुविधाओं से अपरिचित, वैज्ञानिक विकास से दूर, वर्तमान फैशनकाल की चकाचौंध से अनभिज्ञ और सामाजिक संपर्क की अल्पता से उपजे शांत व एकाकी परिवेश में जीवनयापन करने वाली राजस्थान की जनजातियां आज भी परंपरागत सामाजिक मूल्यों व संस्कारों पर टिकी हुई हैं। इन जनजातियों के अद्भुत रीति–रिवाज, रहन–सहन, आचार–विचार और परंपरागत जीवन मूल्य, सामाजिक विकास के प्रारंभिक स्रोतों का वर्तमान उदाहरण हैं। राज्य में रहने वाली जनजातियों के लोकनृत्यों तथा लोककथाओं के माध्यम से इनकी सामाजिक मर्यादा और विशिष्ट, जीवन पद्धति का सरलता से बोध किया जा सकता है। प्रदेश की मुख्य जनजातियों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है–

मीणा जनजाति

राजस्थान की जनजातियों में मीणा (मीना) जनजाति के लोग सर्वाधिक हैं। इस जनजाति का 51.19 प्रतिशत भाग सवाई माधोपुर, उदयपुर और जयपुर जिलों में निवास करता है तथा शेष 48.81 प्रतिशत भाग डूंगरपुर, बूंदी, कोटा, अलवर, चितौड़गढ़ सीकर आदि जिलों में निवास करता है। मीणा जनजाति प्रारंभ से ही राजपूतों के अधिक निकट रही है, अतः इस जाति के लोग शक्ति के रूप में दुर्गा की पूजा करते हैं। ये अत्यधिक साहसी और धैर्यवान होते हैं। ये लोग अपने एक पूर्वज 'माला जुझार' को इतना सम्मान देते हैं कि सर्वाधिक कठिन परिस्थिति के समय में उसकी सौगंध लेकर अपने कर्तव्य की इतिश्री में सफल हो जाते हैं। पौराणिक तथ्यों से यह

खाना पकाती हुई मीणा आदिवासी मजदूर स्त्री

संकेत मिलते हैं कि जयपुर के पास आमेर, बूंदी तथा देवरिया (प्रतापगढ़) में मीणाओं का शासन था। दूसरी ओर 'अलवर गजेटियर' में जयपुर रियासत के बहुत बड़े क्षेत्र पर मीणाओं के शासन का उल्लेख मिलता है।

कर्नल जेम्स टॉड ने मीणाओं का मूल निवास अजमेर से आगरा तक फैली हुई 'कालीखोह पर्वतमालाओं' में बताया है। प्रदेश में रहने वाले करीब 13 लाख मीणा जनजाति के लोग 12 पालों, 32 टाडों, (गोत्रों) तथा दो समूहों में बंटे हुए हैं। प्रथम समूह में जमींदार मीणाओं और द्वितीय समूह में चौकीदार मीणाओं को सम्मिलित किया जाता है। जमींदार वर्ग के लोग जयपुर और निकटवर्ती क्षेत्रों में रहते हैं। चौकीदार मीणाओं की बहादुरी के कारनामों की कथाएं दक्षिण भारत तक फैली हुई हैं। प्रारंभ से ही संयुक्त परिवार का पालन करने वाले मीणा जनजाति के लोग विवाह संबंधों, नातेदारी तथा रक्त–संबंधों को अधिक महत्व देते हैं। हिंदू धर्म का अनुपालन करने वाले ये लोग जादू–टोना, जन्तर–मन्तर आदि में विश्वास करते हैं।

भील जनजाति

प्रदेश की द्वितीय प्रमुख जनजाति भील है। इस जनजाति के लोग राज्य के भीलवाड़ा, उदयपुर, सिरोही, बांसवाड़ा, डूंगरपुर तथा चित्तौड़गढ़ जिलों के पहाड़ों और जंगलों में रहते हैं। जीविकोपार्जन के साधनों का अभाव होने के कारण राज्य की भील जनजाति अत्यधिक निर्धन है। भील जनजाति की उत्पत्ति के बारे में कहा जाता है कि 'भील' शब्द का प्रयोग तमिल भाषा में 'बिल्लुवर' के रूप में किया जाता है, जिसका अभिप्राय 'धनुषधारी' होता है। इसीलिए इस जाति के लोग तीरंदाजी में अत्यंत निपुण होते हैं। दक्षिणी राजस्थान का शायद ही कोई भील परिवार ऐसा होगा जिसके पास 'धनुषबाण' न हो। इस क्षेत्र के कुछ नवयुवक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की तीरंदाजी प्रतियोगिता में अपने वर्ग को शामिल करने का गौरव प्राप्त कर चुके हैं। तीरंदाजी के साथ–साथ ये लोग स्वभाव से भोले होते हैं। किंतु ये वीर, साहसी, निडर और स्वामिभक्त होते हैं। भील जाति के लोग शराब बनाने और पीने के बहुत शौकीन होते हैं। भीलों की स्त्री अपने पति की सबसे अमूल्य सम्पत्ति होती है।

भीलों की सामाजिक व्यवस्था में वर–वधु के चयन में लड़के–लड़कियों की स्वतन्त्रता का सम्मान किया जाता है। इस जाति में संयुक्त परिवार प्रथा और बहिर्विवाह प्रथा प्रचलित है। विधवा विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, वहीं दूसरी ओर स्वेच्छा से पति–त्याग की अनौपचारिक तलाक प्रथा भी विद्यमान है। बड़े भाई की मृत्यु होने पर युवा विधवा को अविवाहित छोटा भाई 'पछोड़ी ओढ़ाने' की रस्म अदा कर नाते रख सकता है। शादी–ब्याह में 'दापा प्रथा' भी प्रचलित है जिसके अंतर्गत लड़की का पिता 50 रुपए से लेकर 2000 रुपए तक का 'दापा' प्राप्त करता है। भील जाति में हाटा–पाटा (अदला–बदली), स्वेच्छा या जबरदस्ती भगाकर ले जाना आदि रीतियां भी कायम हैं। शपथ के पक्के और जातिगत एकता में विश्वास रखने वाले भील जाति के लोग स्वामिभक्त होते हैं। इसीलिए मेवाड़ के राज्य चिह्न में एक तरफ राजपूत और दूसरी तरफ भील आकृति बनी हुई है। भीलों के छोटे गांव या 10–15 घरों के समूह को 'फला' कहा जाता है तथा 5–6 फलों के समूह या बड़े गांव को 'पाल' कहा जाता है। पाल के मुखिया को 'गमेती' या ग्राम स्वामी (पावली) कहा जाता है। बांसवाड़ा जिले में ऐसे मुखिया को 'रावत' के नाम से संबोधित किया जाता है। वरिष्ठता या उत्तराधिकारी की हैसियत से बने ऐसे गमेती के निर्णय को सम्मान की दृष्टि से स्वीकार किया जाता है। शादी–ब्याह और सामाजिक कार्यक्रमों में गमेती की उपस्थिति लगभग अनिवार्य होती है। वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था में भी वार्डपंच तथा सरपंच आदि के पदों पर गमेती ही चयनित होता है। गमेती ही इनके झगड़ों का निपटारा करता है। वस्त्राभूषणों के आधार पर कमर में 'खोयतू' (लंगोटी) बांधने वाले भीलों को 'लंगोटिया भील' और बण्डी तथा पगड़ी द्वारा शरीर को ढकने वाले भीलों को 'पोतीदा भील' कहा जाता है। लंगोटिया भीलों की स्त्रियां 'कछावु' (घुटने तक नीचा घाघरा) पहनती हैं। प्रायः पुरुष भील घर में अपनी कमर पर तौलिया लपेटे हुए रहते हैं जिसे 'फालू' के नाम से पुकारा जाता है। खपरैल, बांस तथा घास–फूस से निर्मित भीलों के आयताकार घर को 'कू' कहा जाता है। हिंदू धर्म की परंपराओं व मान्यताओं में विश्वास रखने वाले भील लोग घुमक्कड़ स्वभाव के होते हैं तथा झूमिंग कृषि और मजदूरी से अपना जीविकोपार्जन करते हैं।

गरासिया जनजाति

यह जनजाति मुख्य रूप से दक्षिणी राजस्थान के पाली, सिरोही, उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा जिलों में शहरी वातावरण से दूर अरावली पर्वत श्रृंखला की पहाड़ियों में रहती है। इस जाति के लोग अपने आपको चौहान राजपूतों के वंशज मानते हैं तथा दुर्गा, भैरव, शिव आदि की पूजा करते हैं। सफेद रंग के पशुओं को पवित्र मानने वाले ये लोग अत्यधिक अंधविश्वासी होने के साथ–साथ जादू–टोना में भी विश्वास करते हैं। प्रदेश की गरासिया जनजाति के लोग रहन–सहन तथा वेशभूषा में अपनी अलग पहचान रखते हैं। इस

जनजाति में लगभग सभी जनजातीय विवाह प्रथाएं प्रचलित हैं। बहु–विवाह तथा गमेती द्वारा अनमेल विवाह की घटनाएं गरासियों में प्रायः देखी जाती हैं। 'मौर बंधिया विवाह' में हिन्दुओं की भांति फेरे आदि के बाद ब्राह्मण दक्षिणा दी जाती है जबकि पहरखाना विवाह में ब्राह्मण की अनुपस्थिति में ही नाममात्र के फेरे होते हैं। इसके विपरीत 'ताणना विवाह' में फेरे की रस्म नहीं होती है। बल्कि वर पक्ष के द्वारा निर्धारित 'दापा' (कन्या मूल्य) चुकाया जाता है। राज्य की गरासिया जाति ताणना विवाह के कारण ही अधिक प्रसिद्ध है। इसमें लड़का लड़की को भगाकर ले जाता है तथा दोनों दूर जाकर जीविकोपार्जन करना शुरू कर देते हैं। तत्पश्चात् कन्या पक्ष की ओर से उनकी तलाश करके विवाह कर दिया जाता है। लड़की को भगाने हेतु गणगौर के मेले को प्रमुख अवसर माना जाता है। गरासियों का गवरी नृत्य (गोरी पूजा) भी इस बात का सूचक है कि वे पार्वती मां के विशेष भक्त हैं। गरासियों के घूमर नृत्य को 'वालर' कहा जाता है। इनके मुखिया को 'मुखी' या पटेल के नाम से पुकारा जाता है। गरासिया पंचायत यौन संबंधों को बड़ी गंभीरता से लेते हैं।

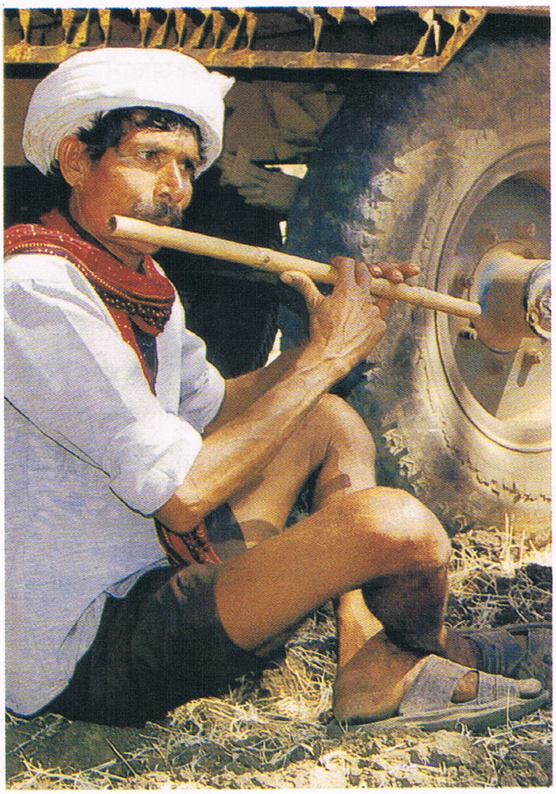

भील आदिवासी बांसुरी बजाता हुआ

गरासिया सामाजिक व्यवस्था में पत्नी को तलाक का अधिकार नहीं है। लेकिन पति स्त्री के माता–पिता को 'सेरासूट' या छेड़ाछूट (पल्लू छुड़ाना) का भुगतान करके उससे अलग हो सकता है। सेरासूट में नाममात्र की रकम चुकायी जाती है। इस जनजाति में एक विवाहित स्त्री से कोई दूसरा पुरुष उसके जीवित पति को वैवाहिक भेंट देकर विवाह संपन्न कर सकता है। ये लोग अधिकांश समय में पशुपालक और कृषि श्रमिकों के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं तथा कोयला बनाने का कार्य भी करते हैं।

सहरिया जनजाति

प्रदेश की सभी जनजातियों में सहरिया जाति को सर्वाधिक पिछड़ी तथा निर्धन माना जाता है। इस जनजाति का 99.47 प्रतिशत भाग बारां जिले के पहाड़ों व जंगलों में रहता है। बारां की शाहबाद और किशनगंज पंचायत समितियों में इनकी संख्या सर्वाधिक है। वस्तुतः सहरिया शब्द की उत्पत्ति प्रशियन भाषा के 'सेहर' शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अभिप्राय 'जंगल' होता है। जंगल में रहने के कारण शाहबाद के मुस्लिम शासकों ने भीलों के इस समूह को सहरिया नाम दे दिया। इसीलिए सहरिया जनजाति को भीलों की ही एक उपजाति माना जाता है। ये लोग धनुष–बाण के स्थान पर कुल्हाड़ी रखते हैं। सहरिया जाति के लोग गिरोह के रूप में गांव या कस्बे के बाहर अपनी अलग बस्ती बनाकर रहते हैं जिसे 'सहरोल' या 'सहराना' कहा जाता है। इनके मुखिया को 'कोतवाल' के नाम से पुकारा जाता है। पंडित के स्थान पर गांव का पंच ही शादी कराता है। बांस व घास की कुटिया में जीवन व्यतीत करने वाले अधिकांश सहरिया लोग कृषि श्रमिकों व मजदूरों के रूप में अपना जीविकोपार्जन करते हैं। सामूहिक एकता, विश्वास तथा बहादुरी का सहरिया लोगों में नितान्त अभाव पाया जाता है।

सहरिया सामाजिक व्यवस्था में स्थायी वैवाहिक जीवन को अधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। कभी–कभी विवाहिता तथा कुंआरी लड़कियों को 'नाते' से भी लाया जाता है। हिन्दू धर्म की अनुयायी यह जनजाति 'तेजाजी' की आराधना को विशेष महत्व देती है। इनकी स्मृति में भंवरगढ़ के मेले में भाग लेना हर सहरिया अपना पुनीत कर्तव्य समझता है। वैशाखी अमावस के दिन सीताबाड़ी का मेला भी सहरिया लोगों के लिए विशेष महत्व रखता है। श्रावण मास में तथा मकर संक्रांति के अवसर पर ये लोग गैर–नृत्य खेलते हैं जिसे 'लेंगी' कहा जाता है। होली के बाद सहरिया लोगों द्वारा 'राई–नृत्य' का आनन्द उठाया जाता है। इनके सामूहिक नृत्य स्थल को 'बंगला' कहा जाता है तथा एक ही गांव के लोगों के घरों के समूह को सहरिया भाषा में 'थोक' या 'फला' के नाम से संबोधित किया जाता है। राज्य सरकार द्वारा इस जनजाति के जीवन–स्तर को उच्च बनाने हेतु शिक्षा, कृषि तथा चिकित्सा सुविधाओं को प्राथमिकता देते हुए सहरिया विकास कार्यक्रम क्रियान्वित किया गया है। सहारिया क्षेत्र में आश्रम स्कूलों का संचालन भी किया जाता है।

डामोर जनजाति

डामोर जनजाति के अधिकांश लोग डूंगरपुर जिले की सीमलवाड़ा पंचायत समिति के गुदावाड़ा, डूंका आदि गांवों में रहते हैं। कुछ डामोर बांसवाड़ा, उदयपुर, चुरू, गंगानगर व हनुमानगढ़ जिलों में भी निवास करते हैं तथा इनके अनेक गोत्र (चौहान, परमार, सिसोदिया, मालीवाड़, बारिया, आदि) राजपूतों से मिलते–जुलते हैं। इनके पहनावे तथा भाषा पर गुजरात का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। यद्यपि डामोर तन की शुद्धता को भीलों की तुलना में विशेष महत्व देते हैं। लेकिन खानपान, रीति–रिवाज, जन्म, विवाह, मृत्यु व अन्य संस्कारों में ये लोग भील तथा मीणा जनजातियों के काफी नजदीक हैं। मांसाहारी तथा शराब प्रिय डामोर लोग कृषि से ही जीवनयापन करते हैं।

कंजर जनजाति

प्रदेश के कोटा बारां, बूंदी, झालावाड़, भीलवाड़ा, उदयपुर, अजमेर, अलवर जिलों में रहने वाले कंजर जाति के लोग चोरी, डकैती लूटमार में विश्वास करते हैं। राज्य की यह घूमन्तु जाति अपराध वृत्ति के लिए प्रसिद्ध है। सामूहिक एकता में विश्वास रखने वाले कंजर जाति के लोग अपनी ही जाति की पंचायत के आदेशों का सम्मान से पालन करते हैं, इनके मुखिया को 'पटेल' कहा जाता है जो हालांकि चोरी व लूटपाट में हिस्सा नहीं लेता है। लेकिन चोरी करते समय पकड़े गए कंजरों की सुरक्षा करना इसका नैतिक दायित्व होता है। चौथमाता तथा हनुमानजी को अपना आराध्य देव मानने वाले कंजर लोगों में सच्चाई उगलवाने के लिए 'हाकम राजा का प्याला' पीकर कसम खाने की परंपरा भी है। इस जाति में यह कसम सबसे बड़ी मानी जाती है। कंजर महिलाएं नृत्य व गायन कार्यक्रमों में देश–विदेश में नाम कमा चुकी हैं। नृत्य के दौरान इन महिलाओं द्वारा रंगीन प्रिन्टेड कपड़े का चुस्त पायजामा पहना जाता है जिसे कंजर भाषा में 'खूसनी' कहा जाता है। मरते समय व्यक्ति के मुंह में शराब की कुछ बूंदें डाली जाती हैं। मृतकों को गाड़ने की प्रथा भी है। मांसाहारी व शराबप्रिय इस जाति की महिलाएं, बच्चे व पुरुष सभी लोग साथ–साथ शराब का सेवन करते हैं। मोर का मांस उन्हें सर्वाधिक प्रिय होता है। इस जाति के सुधार हेतु सरकारी प्रयासों के बावजूद महिलाओं में वेश्यावृत्ति तथा पुरुषों व बच्चों में चोरी, डकैती की प्रवृत्तियां आज भी जारी हैं।

कथौड़ी जनजाति

राजस्थान में कथौड़ी जनजाति के लोग बारां जिले के कुछ गांवों में खानाबदोश जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ये लोग जंगलों में खेर के पेड़ों से कत्था तैयार करके जीविकोपार्जन कर रहे हैं तथा जंगलों में ही पत्तों से बनी अस्थायी झुग्गी–झोपडियों में निवास करते हैं। आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी हुई इस जनजाति के विकास हेतु और अधिक सरकारी प्रयास वांछनीय हैं।

सांसी जनजाति

प्रदेश के भरतपुर और झुंझुनू जिलों में सांसी जनजाति घुमक्कड़ी जीवन व्यतीत कर रही है। यद्यपि इस जाति के लोगों का कोई स्थायी निवास स्थान नहीं होता है। लेकिन विगत कुछ वर्षों से सरकार द्वारा निर्मित मकानों में कुछ सांसी परिवार स्थायी रूप से रहने लग गए हैं। इस जाति के लोग हिंदुओं की भांति देवी–देवताओं, पीपल, बरगद आदि की पूजा करते हैं। कुछ सांसी परिवार गिरोह या समूह के रूप में अपना डेरा–तम्बू लेकर जंगलों में स्थान बदलते रहते हैं। ये लोग अपने गिरोह में विवाह न करके दूसरे गिरोह के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करना पसंद करते हैं। विवाह की इस प्रथा को बहिर्विवाह कहा जाता है। इस जनजाति में विधवा विवाह तथा अवैध यौन संबंधों पर प्रतिबंध के साथ–साथ कठोर दण्ड की व्यवस्था होती है। इस जनजाति में नाता प्रथा आज भी प्रचलित है। शराब और मांस के शौकीन सांसी लोगों को लोमड़ी और सांड का मांस सर्वाधिक प्रिय होता है। जंगल भ्रमण के दौरान ही दो गिरोह के मिलने पर अत्यन्त ही साधारण ढंग से सगाई की रस्म अदा कर दी जाती है और लड़के–लड़कियों की शादी तय करना माता–पिता का नैतिक कर्तव्य होता है। सांसी जनजाति के लोग अपना जीवनयापन करने के लिए शिकार करने के साथ–साथ कस्बों व शहरों में जूते–चप्पलों की मरम्मत भी करते हैं। आजकल कुछ लोग छोटे–छोटे हस्तशिल्प और कुटीर व्यवसायों से भी अपने परिवार का गुजारा चलाते हैं। शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ी हुई इस जनजाति के लोगों में विकास के प्रति चेतना का भी पूर्ण अभाव बना हुआ है।

अतः कहा जा सकता है कि स्वतन्त्र भारत के सीमान्त प्रदेश राजस्थान का जनजातीय संसार न केवल विचित्र परंपराओं से ओत–प्रोत है, बल्कि यह आदि मानवकाल से संबद्ध संस्कृति का संरक्षक भी बना हुआ है। हालांकि केंद्र और राज्य सरकार के द्वारा प्रदेश की लगभग सभी जनजातियों के जीवन स्तर में सुधार के लिए हर संभव प्रयास किए जा रहे हैं, किंतु कुछ जनजातियों के सीमित परिवारों को छोड़कर बाकी सभी जनजातियों के परिवारों की हालत आज भी दयनीय बनी हुई है, अतः प्रदेश की भौगोलिक विशिष्टताओं को दृष्टिगत रखते हुए जनजातीय विकास कार्यक्रमों और सहायता योजनाओं में और अधिक वृद्धि की जानी चाहिए ताकि राज्य का जनजातीय समाजोत्थान किया जा सके।

(लेखक एसपीयू कॉलेज फालना में व्यावसायिक प्रबन्ध के प्रवक्ता हैं।)

ई–मेल : isnmsharma@yahoo.com

सहरिया जनजाति का शैक्षिक विकास कार्यक्रम एवं समस्याएं

लालकृष्ण शर्मा

राजस्थान के हाड़ौती अंचल के बारां जिले की शाहबाद एवं किशनगंज तहसील के गांवों तथा जंगलों में सहरिया जनजाति निवास करती है, जो राज्य का एकमात्र आदिम जनजाति समूह है। मध्य प्रदेश के उत्तर–पश्चिमी भाग में शिवपुरी, गुना, दतिया, मुरैना जिलों में भी यह जनजाति निवास करती है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार राज्य में 73,995 सहरिया लोग हैं जो राज्य की कुल जनजाति जनसंख्या का लगभग 1.1 प्रतिशत हैं। सहरिया शब्द फारसी के 'सेहर' शब्द से उत्पन्न माना जाता है, जिसका अभिप्राय जंगल में निवास करने से है। मुगलकालीन सैन्य अभियानों में रसद एवं सेवा में कार्यरत लोगों के जंगलों में विपन्न स्थिति में रह जाने से भी इनकी व्युत्पत्ति मानी जा सकती है।

सहरिया लोग मुख्यतः गांव से बाहर निश्चित स्थान पर बनायी गई सामूहिक बस्ती में निवास करते हैं। इनकी बस्ती को 'सहराना' कहा जाता है, जिसमें इनके घर झोपड़ों के रूप में एक साथ बसे दिखलायी देते हैं। सहराना में अन्य जाति के लोग निवास नहीं करते हैं। घर की दीवारें मिट्टी एवं पत्थर से निर्मित होती हैं और छतें पत्थर के पतले कातलों, आम के पत्तों अथवा तेन्दू पत्तों से ढकी मिलती हैं। घर की दीवारों एवं आंगन पर मिट्टी से लिपाई की जाती है। घर के बाहर ये लोग बड़े ही आकर्षक एवं मनमोहक 'माँडणे' (भित्ति चित्र) बनाते हैं। सहराना के बीच एक छतरीनुमा गोल बड़ी झोंपड़ी बनाते हैं, जिसे 'बंगला' कहा जाता है। 'बंगला' सहराने की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक गतिविधियों का मुख्य केंद्र होता है। जाति पंचायत की बैठक यही होती है। सहराने में आये किसी भी व्यक्ति के मेहमान को इस बंगले में ही ठहराया जाता है।

सहरिया जनजाति बालिका विद्यालय

ज्वार, बाजरा, मक्के की रोटी सहरिया लोगों का मुख्य भोजन है। गेहूं का उपयोग भी आम हो गया है। सहरिया जंगलों से शिकार भी करते हैं। मांसाहार एवं शराब, जो स्थानीय महुए से तैयार की जाती है, का प्रचलन अधिक है। तम्बाकू सेवन तथा बीड़ी पीना भी अधिक प्रचलित है। सहरिया जनजाति में माता–पिता द्वारा निश्चित विधिवत विवाह अधिक प्रचलित हैं। विवाह की रस्म सहराना के पंच–पटेल करा लेते हैं। 'दापा प्रथा' (वधू मूल्य) प्रचलित है। नाता प्रथा भी है, जिसमें विवाहित स्त्री के नाते जाने पर पूर्व पति को झगड़ा राशि चुकानी पड़ती है। विधवा विवाह भी प्रचलित है।

सहरिया जनजाति में जाति, पंचायत का काफी प्रभाव है जो आपसी विवाद निपटाती है। पंचायत किसी अपराध के लिए हर्जाना, प्रायश्चित एवं जाति–बहिष्कार का निर्णय करती है। पंचायत के मुखिया 'पटेल' का पद वंशानुगत होता है। 'पटेल' का पूरा समुदाय आदर करता है। जाति पंचायत के तीन स्तर हैं–पंचताई पंचायत (सहराना स्तर), एकाएशिया पंचायत (11–12 गांवों की पंचायत), चौरासिया पंचायत (84 गांवों की पंचायत)। समुदाय का बड़ा निर्णय अंतिम स्तर की पंचायत से होता है। सन् 1996 के पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक प्रसार) अधिनियम के पश्चात् निर्वाचित पंचायतें भी गठित होने लगी। वन, कृषि तथा श्रम सहरिया लोगों के मुख्य आर्थिक संसाधन हैं। लघुवन उपज संग्रहण तथा पास के खेतों में मजदूरी इनके प्रमुख जीविकोपार्जन के आधार हैं। सहरिया जनजाति की कृषि तकनीक पिछड़ी हुई है। एक फसली भूमि पर अकाल की मार एवं वनों के उजड़ने के साथ सहरिया अत्यधिक पिछड़ गए हैं।

सहरिया जनजाति की साक्षरता सन् 2001 में मात्र 9.21 प्रतिशत थी, जो राज्य के औसत से अत्यन्त कम है। अज्ञानता, निरक्षरता, नशे की प्रवृत्ति एवं आर्थिक पिछड़ेपन के कारण सहरिया जनजाति शोषित समुदाय बनकर रह गई है। सहरिया विकास कार्यक्रम वर्ष 1977–78 से आरम्भ किया गया। इस कार्यक्रम के तहत सहरिया जनजाति के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के भरपूर प्रयास किए गये हैं। व्यक्तिगत एवं सामुदायिक

लाभ के प्रभावी कार्यक्रमों का इस समुदाय ने अशिक्षा एवं शोषण के चलते पूरा लाभ नहीं उठाया है।

सहरिया विकास हेतु प्रमुख कार्यक्रम

सहरिया जनजाति के विकास एवं कल्याण हेतु भारत सरकार के जनजाति कार्य मंत्रालय द्वारा अनेक प्रकार की योजनाएं विशेष केंद्रीय सहायता के रूप में संचालित की जा रही हैं जिनमें एनीकट निर्माण, सामुदायिक कृषि, ट्यूबवैल निर्माण, ब्लास्टिंग द्वारा कुएं गहरा करना, जल संसाधन विकास, निःशुल्क सामूहिक डीजल पम्पसेट वितरण, उन्नत कृषि एवं फलोद्यान कार्य, बकरी इकाई कार्यक्रम (बीमा सहित), नस्ल सुधार हेतु जनक बकरों का वितरण, भूमि विकास, आश्रम छात्रावासों के छात्रों को कोचिंग सुविधा, आश्रम छात्रावास संस्थापन, मुफ्त स्टेशनरी वितरण (कक्षा 1 से 12 तक), पोषण, स्थानीय समुदाय को प्रशिक्षण, ग्रामीण गैर–कृषि उद्योग, स्वरोजगार योजना तथा सहरिया बस्तियों में हैण्डपम्प स्थापना। जैसाकि बताया जा चुका है सहरिया जनजाति में साक्षरता एवं शिक्षा का स्तर अत्यन्त न्यून है अतः सहरियाओं के शैक्षिक विकास हेतु संचालित विशेष कार्यक्रमों का विवरण यहां दिया जा रहा है–

आश्रम विद्यालय की स्थापना

इस योजना का शुभारम्भ वर्ष 1990–91 में हुआ था। इस योजना के अन्तर्गत प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिये आश्रम विद्यालय बनाये जाते हैं। इन आश्रम विद्यालयों द्वारा अनुसूचित जनजातियों को कार्य संचालन सिखाने के लिये आवश्यक वातावरण उपलब्ध कराया जाता है। योजना के अन्तर्गत आश्रम विद्यालय, विद्यालय छात्रावास, कर्मचारी आवास बनाने के लिये, छात्रावास में रहने वालों के पुस्तकालय के लिये किताबों की खरीदारी, साज–सामान, मेज–कुर्सी तथा इस तरह के अन्य खर्चों के लिए केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को 50:50 के आधार पर तथा संघ राज्य क्षेत्रों को शत–प्रतिशत सहायता दी जाती है।

आश्रम स्कूलों में स्थान तथा उनमें नामांकन की नीति निर्धारण इस प्रकार होगा कि अनुसूचित जनजाति की लड़कियां तथा आदिम जनजातीय समूह, प्रवासी जनजाति, मजदूर तथा खानाबदोश जनजाति के बच्चों को वरीयता दी जाए।

अनुसूचित जनजातीय लड़कियों/लड़कों के लिए छात्रावास की योजना

अनुसूचित जनजाति लड़कियों/लड़कों के लिए छात्रावास की योजना का प्रारम्भ तृतीय पंचवर्षीय योजना (लड़कियों के लिए) तथा वर्ष 1989–90 में लड़कों के लिए किया गया था। छात्रावास की योजना अनुसूचित जनजातियों के लड़के/लड़कियों में शिक्षा का प्रसार करने के लिये एक लाभदायक तंत्र है। इस योजना के अन्तर्गत नए छात्रावास भवनों के निर्माण तथा विद्यमान छात्रावासों के लिये राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को केन्द्रीय सहायता प्रदान की जाती है। योजना के अन्तर्गत छात्रावासों, भवनों और मौजूदा छात्रावासों के विस्तार के निर्माण की लागत को केन्द्र और राज्य के बीच 50:50 के अनुपात के तहत वहन किया जाता था। संघ राज्य क्षेत्रों के मामले में भवन की पूरी लागत केन्द्रीय सरकार द्वारा वहन की जाती थी और छात्रावास के रख–रखाव की जिम्मेदारी सम्बन्धित राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों की होती है। अनुसूचित जनजातियों की बालिकाओं के लिए मिडिल और हाईस्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में छात्रावास बनाए जाते हैं।

जनजातीय क्षेत्रों में व्यावसायिक प्रशिक्षण

योजना वर्ष 1992–93 में शुरू की गई थी। इस योजना का मुख्य प्रयोजन जनजातीय युवाओं के कौशल का विकास करना है ताकि उन्हें रोजगार/ स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकें। इस योजना को राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों, स्वायत्त निकाय के रूप में स्थापित संस्थानों अथवा संगठनों, शैक्षिक और अन्य संस्थानों जैसे स्थानीय निकायों सहकारी समितियों और सरकारी संगठनों के माध्यम से क्रियान्वित किया जाता है।

मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति योजना

मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति योजना सभी अनुसूचित जनजाति छात्रों को भारत के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त संस्थाओं में मैट्रिक/माध्यमिक स्तर के बाद अध्ययन जारी रखने के लिये वित्तीय सहायता प्रदान करती है। ये छात्रवृत्तियां राज्य/केंद्रशासित प्रदेश की सरकार द्वारा उन छात्र/छात्राओं को दी जाती हैं जो संबंधित राज्य व केन्द्रशासित प्रदेश के स्थायी निवासी हैं। इस योजना को कार्यान्वित कर रहे राज्य सरकारों/ संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों को मंत्रालय से अपनी–अपनी वचनबद्ध देयताओं के अतिरिक्त 100 प्रतिशत सहायता प्रदान की जाती है। इस छात्रवृत्ति की पात्रता के लिये आय की सीमा बढ़ाकर एक लाख रुपये वार्षिक कर दी गई है जो पहले 40,000 रुपये वार्षिक थी।

विदेश में उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति तथा यात्रा अनुदान योजना

इस योजना के अन्तर्गत चुने गए प्रतिभाशाली छात्रों को विदेश

में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। यह सहायता केवल इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी और विज्ञान जैसे कुछ विशिष्ट विषयों में पीएच.डी और पोस्ट डॉक्टरल अनुसंधान के लिए दी जाती है।

अनुसूचित जनजाति छात्रों की प्रतिभा उन्नयन कोचिंग योजना

छात्रों को इस योजना के अन्तर्गत दी जाने वाली आर्थिक सहायता का वितरण निम्न प्रकार से होता है–

- योजना के अन्तर्गत आने वाले सभी स्तर के पाठ्यक्रम के लिए वार्षिक भरण भत्ता 8,200 अमेरिकी डॉलर तथा ब्रिटेन में रहने वाली प्रत्याशी को यह भत्ता 5,200 पौण्ड स्टर्लिंग दिया जाएगा।
- शोध अध्ययन के लिए सहायता राशि 2,400 अमेरिकी डॉलर प्रति वर्ष तथा ब्रिटेन में रहने वाले प्रत्याशी को 1,560 पौण्ड स्टर्लिंग प्रति वर्ष दिया जाएगा।
- आकस्मिक व्यय भत्ता–पुस्तक, आवश्यक औजार, अध्ययन दौरा, टाईपिंग तथा बाईंडिंग आदि के लिये आकस्मिक व्यय भत्ता के रूप में 550 अमेरिकी डॉलर प्रति वर्ष तथा ब्रिटेन में रहने वाली प्रत्याशी को 400 पौण्ड स्टर्लिंग प्रति वर्ष दिया जाएगा।
- पोलकर–जो भी लागू होगा वास्तविक खर्च दिया जाएगा।
- वीजा शुल्क–वीजा शुल्क भारतीय मुद्रा में अदा किया जाएगा।
- उपकरण भत्ता तथा आकस्मिक यात्रा खर्च–उपकरण भत्ता 1100 रुपये तथा आकस्मिक यात्रा खर्च 15 अमेरिकी डॉलर तक या इसके बराबर भारतीय रुपया दिया जाएगा।
- शुल्क और चिकित्सा निधि प्रीमियम–जो वास्तविक होगा वह दिया जाएगा।
- हवाई यात्रा–भारत में शैक्षणिक संस्थान तक इकोनॉमी श्रेणी का भाड़ा दिया जाएगा।
- स्थानीय यात्रा भत्ता– स्थानीय यात्रा के रूप में प्रत्याशी को द्वितीय तथा कोच श्रेणी का रेलभाड़ा दिया जाता है यद्यपि गंतव्य तक रेल सुविधा है तो सामान्य श्रेणी बस भाड़ा दिया जाएगा।
- सरकार द्वारा निर्धारित स्थान पर साक्षात्कार के लिए उपस्थित होने के लिए प्रत्याशी को अपने नजदीकी गृह शहर से निर्धारित शहर तक के लिये द्वितीय श्रेणी का रेलभाड़ा अथवा सामान्य श्रेणी बस भाड़ा दिया जाता है।

अनुशंसित आर्थिक सहायता के पूरा होने अथवा निर्धारित समय दोनों में से जो पहले हो, तक दी जाती है–

पीएच.डी के बाद का शोध	½ वर्ष
पीएच.डी	4 वर्ष
स्नातकोत्तर डिग्री	3 वर्ष

ऊपर लिखित निर्धारित समय–सीमा में किसी प्रकार का विस्तार बिना आर्थिक सहायता के आधार पर किया जाता है परन्तु भारत वापस आने के लिए हवाई यात्रा का खर्चा दिया जाएगा और वह भी विश्वविद्यालय/संस्थान के किसी सक्षम अधिकारी के अनुशंसा पर ही दिया जाता है।

विदेश अध्ययन के लिए चुने गए प्रत्याक्षी के परिवार की मासिक आय 18,000 रुपये से अधिक नहीं होनी चाहिए। किसी भी माता–पिता/अभिभावकों का केवल एक बच्चा ही इस योजना का लाभ उठा सकता है। उसकी उम्र 35 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।

अनुसूचित जनजाति छात्रों की प्रतिभा उन्नयन तथा कोचिंग योजना

सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत शुरू की गई जनजाति के छात्रों की प्रतिभा उन्नयन योजना का प्रयोजन 9 से 12 तक की कक्षाओं में कोचिंग देकर जनजातीय छात्रों की प्रतिभा को बढ़ाना है। उपचारी कोचिंग का उद्देश्य विभिन्न कमियों को दूर करना है। विशेष कोचिंग का उद्देश्य छात्रों को प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए तैयार करना है ताकि वे इंजीनियरिंग और चिकित्सा जैसे व्यावसायिक पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त कर सकें। योजना में राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को 100 प्रतिशत केन्द्रीय

सहायता देने का प्रावधान है। प्रति छात्र 1,500 रुपये एकमुश्त अनुदान देने का प्रावधान है।

जनजातीय क्षेत्रों में महिलाओं के लिए कम साक्षरता वाले इलाके में शैक्षिक परिसर योजना

अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की साक्षरता में सुधार लाने के लिए इस योजना को वर्ष 1993–94 में शुरू किया गया। इस परियोजना को सरकार द्वारा स्वायत्त निकायों/शैक्षिक तथा अन्य संस्थाओं जैसे सहकारी सोसायटियों के रूप में गैर–सरकारी संगठन को तत्कालीन 11 तथा वर्तमान में 13 राज्यों में पहचान किए गए 136 जिलों, जहां 2001 की जनगणना के अनुसार जनजातीय महिला साक्षरता 10 प्रतिशत से कम है, में लागू किया गया। इस परियोजना के तहत शैक्षिक परिसरों की स्थापना करने के लिए शत–प्रतिशत वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

शैक्षिक परिसर योजना पहली से पांचवीं कक्षा तक पढ़ने वाली लड़कियों के लिए है जिसमें प्रत्येक कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या 30 है। भवन किराये या अनुरक्षण, पढ़ाने, भोजन, ठहरने के अलावा छात्राओं की चिकित्सा एवं स्वास्थ्य पर अनावर्ती व्यय के साथ–साथ आवर्ती व्यय को पूरा करने के लिये अनुदान प्रदान किया जाता है।

राजीव गांधी राष्ट्रीय फैलोशिप (आर.जी.एन.एफ.) योजना

जनजातीय कार्य मंत्रालय ने योजना आयोग की पहल पर वर्ष 2005–06 से राजीव गांधी राष्ट्रीय फैलोशिप नाम की केंद्रीय क्षेत्र की एक नई योजना शुरू की है। इसके अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों को एम.फिल. और पीएच.डी. जैसे उच्चतर अध्ययन के लिए फैलोशिप प्रदान की जाती है। हर वर्ष कुल 667 विद्यार्थियों को फैलोशिप दी जाती है जिसकी अधिकतम अवधि पांच वर्ष होती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सहरिया आदिम जनजाति सहित अन्य जनजातियों के शैक्षिक विकास हेतु देश में गम्भीरता से प्रयास हो रहे हैं किंतु इन प्रयासों के पूर्णतया वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे हैं। सहरिया जनजाति विकास के सन्दर्भ में कतिपय सुझाव इस प्रकार हैं–

- सहरिया जनजाति की मुख्य समस्या निर्धनता, शराबखोरी, क्षयरोग का प्रसार तथा जमींदारों एवं महाजनों द्वारा शोषण प्रमुख है। ऐसे में सहरिया जनजाति के बालक पारिवारिक परिस्थितियों के चलते उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि सहरिया जनजाति शैक्षिक विकास के साथ–साथ मूलभूत आर्थिक विकास कार्यक्रमों को गति प्रदान की जाए।
- सहरिया बालक/बालिकाओं हेतु प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करते हुए किशोर एवं युवा व्यक्तियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों से जोड़ा जाए।
- राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना के अन्तर्गत सहरिया परिवारों के लिए वर्ष में न्यूनतम 200 दिनों का रोजगार सुनिश्चित किया जाए ताकि आजीविका की चिन्ता से मुक्ति मिले और यह परिवार अपने बच्चों को शिक्षा दिला सकें।
- सहरिया जनजाति के लिए सरकार द्वारा बनाये जाने वाले आवास गांवों से दूर जंगल में निर्मित किये जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में परम्परागत रूप से संकोची स्वभाव वाले सहरिया देश के सभ्य एवं विकसित समाज की मुख्यधारा में सम्मिलित नहीं हो पा रहे हैं। अतः यह उचित होगा कि सहरिया आवास गांवों के अन्दर या उनके बिलकुल आसपास निर्मित किये जाएं।
- सहरिया विकास के अन्तर्गत संचालित विकास कार्यक्रमों में बाहरी व्यक्तियों को नौकरी देने के बजाय पढ़े–लिखे सहरिया युवक/युवतियों को अवसर दिया जाना चाहिए।
- सहरिया जनजाति क्षेत्रों में बैंकिंग और स्वास्थ्य सेवाओं का प्रसार किया जाना चाहिए ताकि इन व्यक्तियों का सर्वांगीण विकास हो सके।

(लेखक राजस्थान विश्वविद्यालय के लोक प्रशासन विभाग में सहरिया जनजाति के विकास कार्यक्रमों पर शोध कार्य कर रहे हैं।)

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो (Krutidev 010 CD में) और उसके साथ ई–मेल तथा मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। **कुरुक्षेत्र** में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख वरिष्ठ संपादक, **कुरुक्षेत्र** कमरा नं. 655, 'ए' विंग, गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

जनजातियों का बहुआयामी स्वरूप

डॉ. जगबीर कौशिक

भारत के संविधान की पांचवीं अनुसूची में **'अनुसूचित जनजाति'** शब्द का उल्लेख है। वैसे इन्हें **'आदिवासी'** अर्थात् मूल निवासी कहा जाता है जिसमें भारत की काफी जनसंख्या शामिल है। संस्कृत साहित्य में इन्हें **'अताविक'** अर्थात् वनवासी या गिरिजन भी कहा गया है। इनका अपना स्वतन्त्र धार्मिक अस्तित्व है जो इस्लाम एवं वैदिक धर्म से अलग किन्तु तान्त्रिक शैववाद से मिलता-जुलता है। 19वीं शताब्दी के दौरान काफी लोग ईसाई एवं आधुनिक हिन्दू धर्म में शामिल हो गए। किन्तु यह गौरव की बात है कि इन्होंने अपने अस्तित्व एवं संस्कृति को पश्चिमी संस्कृति के इतने प्रचार-प्रसार के बाद भी बरकरार रखा। जनजातियों में भगवान राम, शबरी, शिव और बिरसा मुण्डा को अपना आराध्य माना जाता है।

पूरे विश्व में जनजातियों का अस्तित्व है। यह स्वतन्त्र जातियां हैं जिनका फैलाव भारत के उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल राज्यों और मिजोरम आदि पूर्वोत्तर राज्यों तक है। अनेक छोटे जनजातीय समूह आधुनिकीकरण के परिणाम-स्वरूप प्रगति कर रहे हैं। इन्होंने कई शताब्दियों से वाणिज्यिक दृष्टि से वनों और कृषि सम्बन्धी व्यवसाय को चुन रखा है।

भौगोलिक परिदृश्य

भारतीय संविधान में 'जनजाति' के रूप में मान्य अनुसूचित जनजातियों की सूची काफी विस्तृत है। भारत की वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार जनजातीय लोग देश की कुल जनसंख्या का 8.3 प्रतिशत और 84 मिलियन से अधिक हैं। जनजातियों की अवस्थिति पश्चिम में जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड से लेकर हिमालय पट्टी में केन्द्रित है तथा पूर्वोत्तर में असम, मेघालय, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, मणिपुर एवं नगालैण्ड तक जनजातीय क्षेत्र फैले हुए हैं। अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम और नगालैण्ड के पूर्वोत्तर राज्यों में 90 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अनुसूचित जनजाति की है। यद्यपि असम, मणिपुर, सिक्किम एवं त्रिपुरा आदि बाकी पूर्वोत्तर राज्यों में जनजाति के लोगों की जनसंख्या 20 से 30 प्रतिशत के मध्य है।

इसके अलावा, जनजातीय क्षेत्रों का विस्तार मध्य भारत में छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश एवं उड़ीसा के पहाड़ी क्षेत्रों तथा उत्तर में नर्मदा नदी और दक्षिण-पूर्व में गोदावरी नदी के बीच पड़ने वाले क्षेत्रों तथा इन राज्यों के पहाड़ी क्षेत्रों की तराई तक है। सन्थाल सहित अन्य जनजातियों का निवास झारखण्ड एवं पश्चिम बंगाल में है। मध्य भारत के राज्यों में अधिकतर जनजातियां विद्यमान हैं जहां कुल जनजाति की जनसंख्या के 75 प्रतिशत लोग निवास करते हैं जबकि ये इस क्षेत्र की कुल जनसंख्या के लगभग 10 प्रतिशत हैं। दक्षिण भारत के कर्नाटक, तमिलनाडु एवं केरल, पश्चिम भारत के गुजरात एवं राजस्थान राज्यों तथा केन्द्र-शासित प्रदेश लक्षद्वीप और अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह में जनजाति के लोगों की संख्या कम है। केरल एवं तमिलनाडु की जनसंख्या के लगभग एक

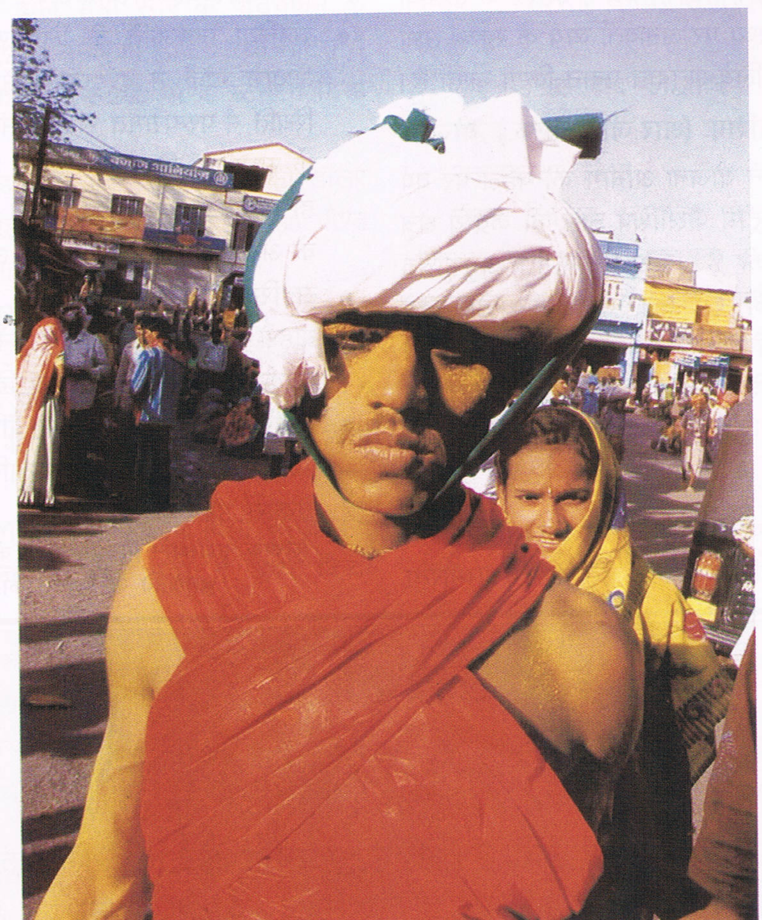

भगोरिया उत्सव पर मनौती के लिए जाता आदिवासी

धर्म	अनुसूचित जनजाति (प्रतिशत में)
बौद्ध	7.40
ईसाई	32.80
सिख	0.90
हिन्दू	9.10
पारसी	15.90
जैन	2.60
इस्लाम	0.50

प्रतिशत जनजाति के लोग हैं जबकि आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक में जनजाति के सदस्य लगभग 6 प्रतिशत हैं।

भारत में विद्यमान जनजातियां

भारत में छोटे–बड़े समूहों में अनेक जनजातियों का अस्तित्व है किन्तु उनमें अण्डमानी, बोडो, भील, चकमा, गुजरात की ढोडिया, कोली, गोण्ड, खासी, लक्षद्वीप के आदिवासी, कुरिचिया, कुरूम्बर, त्रिपुरी, मिजो, मुन्दारी, नागा, निकोबारी, उरांव, सन्थाल, टोडा, गुजरात की मलधारी, चोलानैक्कन, वार्ली, डोंगरिया कोंध, बोण्डा, कुटिया कोंध, बिशप–मिशप आदि प्रमुख हैं।

धार्मिक आधार पर जनजातियों की स्थिति

वर्ष 2006 में प्रस्तुत सच्चर समिति की रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया गया है कि भारत की अनुसूचित जनजातियां हिन्दू धर्म तक सीमित नहीं हैं। एनएसएसओ के 61वें राउण्ड सर्वे में यह बात स्पष्ट हुई है कि एक–तिहाई ईसाई संविधान में अधिसूचित अनुसूचित जनजातियों में आते हैं।

जनजातीयता के निर्धारण की प्रक्रिया

सख्त कानूनी प्रक्रिया के उपयोग के अलावा कौन–सा समूह जनजातीय है, यह निर्धारित करना एक समस्या है। क्योंकि यह मामला आर्थिक हितों से संबंधित है, इसलिए किस समूह के सदस्यों को अनुसूचित जनजाति या पिछड़ा वर्ग माना जाए, यह विवादास्पद बना रहा है। बुद्धिजीवी भी इस विषय में एकमत नहीं हैं। विश्व के अन्य हिस्सों में आदिवासी या उस मूल के वे लोग हैं जो उपनिवेशकाल से पूर्व के रहने वाले हैं। अनेक विद्वान, विशेषकर पश्चिमी बुद्धिजीवी यह मत व्यक्त करते हैं कि भारत के आदिवासी भारत के अन्य समुदायों से पहले के रहने वाले हैं किन्तु भारतीय विद्वानों में मत–वैभिन्य है। इन सभी चुनौतियों के बावजूद आदिवासियों में कुछ ऐसी विशेषताएं विद्यमान हैं जो उन्हें अन्य समुदायों से अलग दिखाती हैं। इन विशेषताओं में भाषा, सामाजिक संगठन, धार्मिक मान्यता, आर्थिक पद्धतियां, भौगोलिक अवस्थिति और खुद की एक पहचान शामिल है।

जनजातियों ने अन्तः सम्बद्ध स्थानीय आर्थिक विनिमय पद्धति बनाई और आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयों की स्थापना की। अधिकतर जनजातीय लोगों को सामान्य जनजातीयता के आधार पर परम्परागत रूप से भूमि उपयोग के अधिकार प्राप्त हुए किन्तु ये सारे तथ्य हर स्थान पर लागू नहीं होते। भाषा हमेशा जनजातीयता अथवा जातिगत स्वरूप की वास्तविकता नहीं दर्शाती। मिश्रित जनसंख्या वाले क्षेत्रों में अनेक जनजातीय समूह अपनी मातृभाषा के स्वरूप को ही भूल चुके हैं तथा सामान्यतः स्थानीय अथवा क्षेत्रीय भाषा बोलते हैं। असम के कुछ हिस्सों में से एक भाग ऐतिहासिक रूप से युद्ध–निपुण जनजाति एवं ग्रामीण जनजाति के मध्य विभक्त है जिनके औपनिवेशिक अवधि के दौरान सम्पर्क बढ़े और वर्ष 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति तक ये सम्पर्क और अधिक गहरे होते गए। असम की जनजातियों ने जब शिक्षा के दौरान हिन्दी और बीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी सीखी तो इनका मिश्रित स्वरूप विकसित हुआ।

धार्मिक स्थिति– जब बात किसी भी वर्ग या समूह अथवा समाज के धार्मिक स्वरूप की आती है तो सभी के अपने शास्त्र, आराध्य देव, संत, अवतार और उपासना पद्धति अलग–अलग हो सकती है। जनजातियों के धार्मिक स्वरूप का अपना अस्तित्व आज भी विद्यमान है।

आराध्य देव– यद्यपि जनजातियों में भगवान राम, शबरी, शिव आदि की उपासना की जाती है किन्तु इन्होंने कुछ अवतारों को भी स्वीकार किया है। जनजातियों में बिरसा भगवान या बिरसा मुण्डा को खसरा कोरा का अवतार माना जाता है। लोग इन्हें सिंहबोंग अर्थात् भगवान् सूर्य के रूप में भी मानते हैं। इन्होंने धर्मान्तरण के विरुद्ध संघर्ष किया और राजनैतिक एवं धार्मिक स्वतन्त्रता का समर्थन किया। ये श्री चैतन्य से प्रभावित होने के कारण वैचारिक दृष्टि से वैष्णव सम्प्रदाय के काफी नजदीक थे।

शिकारी के रूप में भगवान शिव के स्वरूप **'किरात'** को भी ये अपना आराध्य देव मानते हैं जिनका उल्लेख महाभारत में आया है। केरल में स्थित करप्पीलिक्कावू श्री महादेव मन्दिर में भगवान शिव को किरात के स्वरूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। इसे भारत का सबसे प्राचीन मन्दिर होने का गौरव प्राप्त है।

भगवान् शिव के किरात स्वरूप के साथ ही भगवान किरात के पुत्र वेत्तकोरूमाकन को भी जनजातियों में अवतार माना जाता है।

कालादुटका अथवा वैकुण्ठनाथ को भगवान विष्णु का अवतार स्वीकार किया जाता है।

जनजातीय या आदिवासी सन्त– प्रत्येक सम्प्रदाय में समाज को दिशा और संस्कार देने तथा लोगों के नैतिक उत्थान के लिए सन्तों और ऋषियों का प्राकट्य होता रहा है। जनजातीय समूहों में जिन सन्तों ने इस वर्ग में जागृति पैदा की और शोषण का विरोध किया, उनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं:–

सन्त बुद्ध भगत (1831–32) जिन्होंने इस्लाम धर्मावलम्बी राजाओं द्वारा लगाए गए करों का विरोध किया।

सन्त धीरा या कन्नप्पा नयनार– ये 63 नयनार शैव सन्तों में से एक थे और भगवान् शिव इनसे भोजन ग्रहण करते थे। कहा जाता है कि ये अपने मुख से जल उड़ेल कर भगवान शिव का जलाभिषेक करते थे।

कालेश्वर महाराज मन्दिर साठखेड़ा में परंपरागत वेशभूषा में आदिवासी दूल्हा

सन्त धुन्धुलीनाथ– इनका प्राकट्य गुजरात में 17वीं अथवा 18वीं शताब्दी में कोली जनजाति में हुआ था।

सन्त गंगा नारायण– इन्होंने मिशनरी एवं ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के विरुद्ध भूमिज आन्दोलन (1832–33) का नेतृत्व किया।

सन्त गुरुदेव कालीचरण ब्रह्मा या गुरु ब्रह्मा– ये बोडी जनजाति के थे। इन्होंने मिशनरी उपनिवेशवादियों के विरुद्ध ब्रह्म धर्म की स्थापना की। ब्रह्म धर्म ने सभी धर्मावलम्बियों को ईश्वर की उपासना करने के लिए एकत्रित किया। यह धर्म आज भी प्रचलित है।

सन्त गिरनारी वेलनाथ जी– ये जूनागढ़, गुजरात में कोली जनजाति में 17वीं अथवा 18वीं शताब्दी में हुए थे।

सन्त जात्र उरांव– इन्होंने ब्रिटिश एवं मिशनरी उपनिवेशवादियों के विरुद्ध ताना भगत आन्दोलन (1914–1919) का संचालन किया।

सन्त श्री कोया भगत– ये गुजरात की कोली जनजाति में 17वीं या 18वीं शताब्दी में हुए।

सन्त तांत्या मामा– यें भील जनजाति में प्रकट हुए जिनके ब्रह्मलीन होने के बाद **'जननायक तांत्या भील'** आन्दोलन चला।

सन्त तिरुमंगाई– इन्होंने सुन्दर तमिल पद्यों में षड् वेदांगों की रचना की। इनके अलावा भारतीय जनजातियों में भक्त शबरी के गुरु महर्षि मतंग, महर्षि वाल्मीकि (किरात भील), भक्तराज भदूरदास कोली, मदन भक्त, कांजी स्वामी, भक्तराज वलराम आदि भी हुए।

अन्य जनजातियां एवं हिन्दू सम्प्रदाय– कुछ हिन्दुओं का ऐसा मानना है कि भारतीय जनजातियां वैदिक कालीन प्राचीन ग्रामीण संस्कृति के भावना प्रधान आदर्शों से काफी मिलती–जुलती हैं। भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर में आज भी ब्राह्मण और बड़ू (जनजाति) के पुजारी होते हैं। बड़ू का मन्दिर के देवता के साथ अत्यन्त भावुक सम्बन्ध होता है और वही मन्दिर के देवता को स्नान एवं वस्त्र धारण कराता है। महाभारत में भील जनजाति का उल्लेख आया है। भील जनजाति का बालक एकलव्य गुरु द्रोणाचार्य का शिष्य था जिसने गुरु दक्षिणा में अपना अंगूठा दान करने में भी संकोच नहीं किया। इसे इन्द्रप्रस्थ में आयोजित युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आमन्त्रित किया गया था। रामायण एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार भारतीय जनजातियां राजाओं की सेना का प्रमुख हिस्सा होती थी।

सरना– कुछ जनजातियां स्वयं को पूरी तरह हिन्दू नहीं मानती। कुछ पश्चिमी लेखकों और भारतीय समाजशास्त्रियों ने उन्हें जड़वादी एवं आत्मा को ही ईश्वर मानने वाले कहा है। झारखण्ड, छत्तीसगढ़ तथा उड़ीसा आदि मध्य भारत के राज्यों में इनके धर्म को सरना कहा गया है। यह नाम पवित्र उपवन से दिया गया है जिसे आराधना स्थल के रूप में माना जाता है।

अर्थव्यवस्था– अधिकतर जनजातियां घने जंगलों में निवास करती थी जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सीमित थी। प्राचीनकाल में ज्यादातर लोग कृषि, शिकार और वनों में पाए जाने वाले उत्पादों

को एकत्रित करते थे और उन्हें बाहरी लोगों को बेचकर उनके बदले नमक, लोहा आदि जिस वस्तु की जरुरत होती थी, उनसे लेते थे। कुछ हिन्दू शिल्पकार उन्हें भोजन पकाने के बर्तन उपलब्ध कराते थे।

बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में विशाल जनजातीय क्षेत्र गैर–जनजाति के हाथों में चला गया। इससे परिवहन एवं संचार माध्यमों की स्थिति में सुधार आया। वर्ष 1990 के आसपास जनजातीय क्षेत्रों में आने वाले प्रवासियों के बसने के लिए एक योजना के माध्यम से सरकार ने अनेक क्षेत्रों को खोल दिया और खेतीबाड़ी के लिए मुफ्त जमीन का स्वामित्व दे दिया। यद्यपि जनजातीय लोगों के लिए भूमि को सामान्य संसाधन के रूप में देखा गया और जिन्हें इसकी आवश्यकता थी, उन्हें भी मुफ्त दी गई। समय के साथ–साथ जनजातीय लोगों ने भूमि के औपचारिक पट्‌टे प्राप्त करने की आवश्यकता महसूस की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जनजातीय लोगों को प्रवासी लोगों से बचाने की जरूरत के साथ ही जनजातीय क्षेत्रों की भूमि को बेचने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

1970 के दशक में विशेषकर मध्य भारत में जनजातीय लोग पुनः उत्साह के कारण भूमि के दबाव में आ गए और आश्चर्यजनक ढंग से जनजातीय क्षेत्रों की भूमि अन्य लोगों के हाथों में जाने लगी। पट्‌टे, ऋणों पर बढ़ते ब्याज और भूमि की रजिस्ट्री करने वाले कर्मचारियों की घूसखोरी की आदतों के कारण जनजातीय लोगों के हाथ से भूमि के पट्‌टे निकल गए। इससे अनेक जनजातीय लोग 1960 से 1970 के दशक के मध्य भूमिहीन मजदूर बन गए और ये क्षेत्र जनजातीय एवं गैर–जनजातीय जनसंख्या के मिश्रित स्वरूप में उभर कर आए।

संचार माध्यमों, पक्की सड़कों और परिवहन के साधनों की स्थिति में सुधार होने से जनजातीय क्षेत्रों के निवासियों का बाहरी लोगों से सम्पर्क बढ़ा। वाणिज्यिक राजमार्गों के निर्माण और नकदी फसलों के कारण गैर–जनजातीय लोगों का ध्यान इन रिमोट क्षेत्रों की ओर गया। वर्ष 1970 तक वहां रहने वाले गैर–जनजाति के दुकानदार अनेक जनजातीय गांवों के स्थायी आकर्षण बन गए। चूंकि दुकानदार ऊंचे ब्याज पर सामान उधार देते थे। इसलिए अनेक जनजाति के लोग कर्ज में घिर गए और अपनी भूमि गिरवी रख दी। व्यापारियों ने लोगों को कपास अथवा अरण्डी के पौधे आदि नकदी फसलें बोने के लिए प्रोत्साहित किया जिससे मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जनजातीय लोगों की बाजार पर निर्भरता बढ़ गई और इन लोगों पर ऋणभार बढ़ता ही गया।

हिमालय के तराई क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों का गैर–जनजाति के लोगों द्वारा शोषण नहीं हुआ। प्राचीनकाल से ही इनकी स्थिति शेष भारत के जनजातीय लोगों की अपेक्षा अच्छी रही है। ब्रिटिशकाल में भी भारत के किसी भी राजा का इस क्षेत्र में बहुत कम प्रभाव रहा। इसलिए यहां स्थानीय जनजातियों का ही प्रभाव रहा।

सरकार की वनों को बचाने सम्बन्धी नीतियों ने जनजाति के लोगों को प्रभावित किया। बाहरी लोगों को विशाल वन क्षेत्रों में विद्यमान वृक्षों की कटाई की अनुमति देकर वनों का दोहन किया गया जबकि वहां की मूल निवासी जनजातियों पर वनों की कटाई का प्रतिबन्ध लगा दिया गया। गैर–जनजाति के लोगों द्वारा वनों के लिए आरक्षित भूमि का प्रभावशाली उपयोग सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय अधिकारियों को घूस दी जाती रही है। इससे जनजाति के लोगों को अपनी एकमात्र वनों से प्राप्त होने वाली आजीविका से वंचित होना पड़ा। उत्तरी भारत में इस प्रकार के शोषण से जनजातियां बची रही। अरुणाचल प्रदेश (नार्थ–ईस्ट फ्रंटियर एजेन्सी का पूववर्ती हिस्सा) में जनजातियों का व्यापार एवं अधिकतर निम्न स्तरीय प्रशासनिक पदों पर नियन्त्रण रहा है। इस क्षेत्र में चली सरकारी निर्माण परियोजनाओं ने जनजातियों को नकद आय का स्रोत प्रदान किया। कुछ जनजातियों ने शिक्षा पद्धति के आधार पर तीव्र प्रगति की। इसमें मिशनरियों की भूमिका उल्लेखनीय रही है।

जनजातीय क्षेत्रों में विकास परियोजनाएं– इन क्षेत्रों का विकास सुनिश्चित करने के लिए सरकार द्वारा अनेक परियोजनाएं चलाई जा रही हैं।

- देश में अनुसूचित जनजातीय ग्रामों की कुल संख्या 2474
- ऐसे गांवों की कुल संख्या जिनकी परियोजनाओं को स्वीकृति मिली– 2388
- शेष जनजातीय ग्रामों की संख्या जिनको शामिल किया जाना है– 86
- अब तक जारी की गई कुल राशि – 45924.57 लाख रु.

स्थानीय सीमित क्षेत्र में ही रहकर कोई भी वर्ग प्रगति नहीं कर सकता। यदि जनजाति के लोगों को अपना और अपने क्षेत्र का विकास करना है तो इसके लिए शिक्षा ही एक जरिया हो सकता है। सरकार को भी इन क्षेत्रों के निवासियों को देश की मुख्यधारा में लाने के लिए और अधिक गंभीर प्रयास करने होंगे तभी रुक–रुक कर सिर उठा रहे आतंकवाद और नक्सलवाद के हौंसले पस्त किए जा सकते हैं।

(लेखक उद्योग व्यापार पत्रिका में सम्पादन सहायक हैं।)
ई–मेल : dr.kaushik@rocketmail.com

विकास की राह पर जनजातीय समाज

भरत कुमार दुबे

जनजाति से तात्पर्य देश के मूल एवं प्राचीनतम निवासियों से है। ये प्रारंभ से ही दूरस्थ एवं निर्जन स्थानों पर निवास करते रहे हैं। इसी का परिणाम है कि आधुनिक विकास के साधनों और शहरी सभ्यता का बहुत कम प्रभाव जनजातियों पर पड़ा है। जनजातियों की अपनी विशिष्ट पहचान का कारण भी यही है। जनजातीय संस्कृति एक विशिष्ट संस्कृति है। आज के आधुनिक समाज को भी इनसे सीखने के लिए बहुत कुछ है जैसे सद्भावपूर्ण व मानवतावादी समाज, जाति प्रथा, दहेज, छुआछूत जैसी बुराइयों का निषेध, महिलाओं का ऊंचा सामाजिक स्तर, श्रम का सम्मान, जीवन का आनंद उठाने की स्वतः स्फूर्त प्रवृत्ति, आदि।

प्राचीनकाल से ही जनजातियों की अपनी विशिष्ट स्वशासी प्रशासनिक व्यवस्था थी। 18वीं शताब्दी के मध्य में जनजातियों का संपर्क अंग्रेजों से हुआ। जनजातीय क्षेत्रों में अपनी पैठ बनाने के लिए अंग्रेजों ने इनकी स्वशासी व्यवस्था को खंडित करने का प्रयास किया। इसके परिणामस्वरूप अनेक स्थानों पर जनजातियों ने विद्रोह कर दिया। जनजातियों को आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में ढालने के लिए अंग्रेजों ने विशेष प्रशासनिक व्यवस्था लागू करने की शुरुआत की।

जनजातियों को शोषण से मुक्ति दिलाने एवं उनकी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से 1874 में ब्रिटिश सरकार ने शेडयूल्ड डिस्ट्रिक्ट एक्ट लागू किया। इस एक्ट द्वारा जनजातियों के अधिकारों को सुरक्षा दी गई। सन् 1918 में मांटेग्यू चेम्सफोर्ड ने सुझाव दिया कि जनजातीय क्षेत्रों को प्रांतीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा जाए। भारत सरकार ने 1919 में एक अधिनियम बनाकर जनजातीय क्षेत्रों को दो भागों में विभाजित कर दिया। इसके अंतर्गत दूरदराज के कुछ क्षेत्रों को अत्यधिक पिछड़ा क्षेत्र मानते हुए प्रशासनिक सुधारों से मुक्त रखा गया जबकि अन्य क्षेत्रों को अत्यधिक संघीय व प्रांतीय सरकारों में विभाजित कर दिया गया। साइमन कमीशन ने जनजातियों को शिक्षित एवं जागरूक बनाने पर बल दिया ताकि उन्हें धीरे–धीरे राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल किया जा सके।

तीतर बटेर पकड़ने वाली जनजाति के घर रंगीन टी.वी.

स्वतंत्रता से पूर्व जनजातियों के विकास के लिए जो भी कार्य किए गए उनमें अंग्रेजों का स्वार्थ मुख्य था न कि जनजातियों का सर्वांगीण विकास। यह स्वार्थ था धर्मान्तरण। स्वतंत्रता के बाद जनजातियों के सर्वांगीण विकास की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया एवं संविधान में इनके लिए अनेक सुरक्षात्मक उपाय भी किए गए। इन्हें कानूनी संरक्षण प्रदान करते हुए देश की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया गया। प्रमुख जनजातीय समूहों को उनकी स्थिति के अनुसार राज्यवार अनुसूचित घोषित किया गया जिन्हें अंततः अनुसूचित जनजाति कहा जाने लगा।

विकास के शुरुआती दौर में जनजातीय लोगों की समस्याओं के समाधान के लिए सामुदायिक विकास दृष्टिकोण अपनाया गया। पहली पंचवर्षीय योजना में 43 विशेष बहूद्देश्यीय जनजातीय विकास परियोजनाएं (मल्टीपर्पज ट्राइबल डेवलपमेंट प्रोजेक्ट) बनाई गईं। यह परियोजना दूसरी पंचवर्षीय योजना में भी लागू रही। इस परियोजना में अनेक योजनाएं सम्मिलित की गई थी जिससे विकास का समन्वित दृष्टिकोण नहीं बन पाया। इसीलिए तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान जनजातीय विकास के लिए एक अलग कार्यनीति विकसित की गई। इस कार्यनीति में उन सामुदायिक विकास खंडों, जिनमें जनजातीय जनसंख्या 66 प्रतिशत व उससे अधिक थी, को जनजातीय विकास खंड (ट्राइबल डेवलपमेंट ब्लॉक) में बदल दिया गया। चौथी पंचवर्षीय योजना तक देश में जनजातीय विकास खंडों की संख्या बढ़कर 504 हो गई। इस योजना की सबसे बड़ी सीमा यह थी कि इसमें बिखरी जनजातीय जनसंख्या वाले क्षेत्रों को अपेक्षित

लाभ नहीं मिल पाया। इसीलिए जनजातियों के सर्वांगीण विकास के लिए एक नई योजना की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

जनजातीय उपयोजना

जनजातीय लोगों के त्वरित सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए 1972 में प्रसिद्ध समाजशास्त्री एस.सी.दुबे की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया गया। समिति ने जनजातीय क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास के लिए जनजातीय उपयोजना लागू करने की सिफारिश की। इस योजना को पांचवीं पंचवर्षीय योजना में शुरू किया गया और यह आज भी जारी है। जनजातीय उपयोजना की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- किसी राज्य अथवा केंद्रशासित प्रदेश की सीमा के भीतर जनजातियों के कल्याण व विकास से संबंधित योजना तैयार करना राज्य या केंद्रशासित प्रदेश की समग्र योजना का एक भाग है और इसीलिए उसे 'उपयोजना' कहा गया।
- जनजातीय उपयोजना के अंतर्गत आवंटित की गई निधियां कम से कम प्रत्येक राज्य या केंद्रशासित प्रदेश की जनजातीय जनसंख्या के अनुपात के बराबर होनी चाहिए।
- जनजातीय उपयोजना के अंतर्गत जनजातीय लोगों व क्षेत्रों को जो लाभ मिलते हैं वे लाभ किसी केंद्र/राज्यशासित क्षेत्र की समग्र योजना से मिलने वाले लाभों के अतिरिक्त होते हैं।
- जनजातीय योजना में सबसे पहले विकसित क्षेत्रों के लिए संसाधनों की पहचान की जाती है फिर विकास के लिए नीतिगत ढांचा तैयार किया जाता है और अंत में विकास नीति के ढांचे के अनुरूप प्रशासनिक कार्यवाई की जाती है।
- जनजातीय उपयोजना का क्रियान्वयन 22 राज्यों तथा 2 केंद्रशासित प्रदेशों में किया जा रहा है।
- अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नगालैण्ड, मिजोरम, लक्षद्वीप, दादरा नगर हवेली 'जैसे जनजातीय–बहुल राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में जनजातीय उपयोजना की अवधारणा लागू नहीं होती क्योंकि यहां की जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या का अनुपात 80 प्रतिशत से अधिक है। दूसरे, इन राज्यों व केंद्रशासित क्षेत्रों में वार्षिक योजना स्वयं में जनजातीय योजना है।

जनजातीय उपयोजना क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र में निवास करने वाले अनुसूचित जनजाति के लोगों को लाभान्वित करने हेतु वर्ष 1978–79 से परिवर्तित क्षेत्रीय विकास उपागम (माडा) योजना लागू की गई। इस योजना के अंतर्गत विकास हेतु लघु खण्ड बनाए गए, प्रत्येक लघु खण्ड में 10,000 की जनसंख्या एवं सम्मिलित ग्रामों की कुल जनसंख्या का 50 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या का होना आवश्यक माना गया है। इसके अतिरिक्त जनजातियों की बिखरी जनसंख्या को भी लाभान्वित करने हेतु वर्ष 1988–89 से बिखरी जनसंख्या योजना को लागू किया गया।

आरंभ में जनजातीय उपयोजना का बल पारिवारिक आय सृजन की गतिविधियों पर था। दसवीं योजना से इस योजना को आय व रोजगार सृजित करने पर केंद्रित किया गया। मांग आधारित आय सृजन कार्यक्रमों में तेजी लाई गई और जनसंख्या के सामाजिक–आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाने का लक्ष्य रखा गया। योजना का 30 प्रतिशत हिस्सा महिलाओं से संबंधित गतिविधियों के लिए आरक्षित रखा गया है।

केंद्रीय मंत्रालयों की जनजातीय उपयोजना घटक

यह अपेक्षा की जाती है कि जनजातीय उपयोजना का कार्यान्वयन सभी केंद्रीय मंत्रालय व विभाग भी करें। इसके लिए सभी केंद्रीय मंत्रालयों व विभागों में धन की जरूरत होती है। योजना आयोग तथा जनजातीय कार्य मंत्रालय ने सभी केंद्रीय मंत्रालयों तथा विभागों से देश में जनजातियों की जनसंख्या प्रतिशतता के अनुसार अपनी वार्षिक योजनाओं में धनराशि निर्धारित करने का अनुरोध किया है।

राज्य सरकारों की जनजातीय उपयोजना

योजना आयोग ने राज्यों को निर्देश दिया है कि राज्य अपने कुल बजट परिव्यय में से जनजातीय उपयोजना हेतु राशि आरक्षित रखें, जो अलग बजट शीर्ष कोड 796 में रखी जानी हैं। योजना आयोग के दिशानिर्देशों के अनुसार जनजातीय उपयोजना की निधियां अपरिवर्तनीय हैं। यह व्यवस्था भी की गई है कि राज्यों में जनजातीय उपयोजना के निरूपण एवं कार्यान्वयन हेतु जनजातीय कल्याण विभाग नोडल विभाग होगा।

वनग्रामों के विकास की योजनाएं

औपनिवेशिक काल में वानिकी के विभिन्न कार्यों हेतु श्रम शक्ति उपलब्ध कराने के लिए वन क्षेत्रों में अस्थाई अधिवास स्थापित किए गए थे। धीरे–धीरे ये अधिवास गांवों में बदल गए। इन ग्रामों के अधिकांश निवासी जनजातीय हैं। ये ग्राम जिलों के राजस्व प्रशासन से बाहर हैं। इसलिए विकास के लाभ से वंचित हैं। इन वन ग्रामों के राजस्व ग्रामों में बदलने की प्रक्रिया जारी है। देश में इस प्रकार के 2474 वन ग्राम हैं जो राज्यों के वन विभागों के प्रबंधन में हैं। इन गांवों में सुरक्षित पेयजल, प्राथमिक शिक्षा, संपर्क मार्ग, पेयजल, सिंचाई आदि सुविधाओं को उपलब्ध कराने पर जोर दिया जा रहा है।

जनजातीय सलाहकार समिति

संविधान की पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के अधीन अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन की व्यवस्था हेतु एक आदिवासी सलाहकार समिति के गठन का प्रावधान किया गया है। इस समिति में अधिकतम 20 सदस्य होते हैं, जिनमें से तीन–चौथाई अनुसूचित जनजाति के विधानसभा सदस्यों का होना अनिवार्य है। इस समिति से यह आशा की जाती है कि वह राज्य सरकार को जनजातियों के विकास से संबंधित योजनाओं हेतु सलाह व दिशानिर्देश प्रदान करें। इस प्रकार की समितियां 8 राज्यों में हैं। जिन राज्यों में अनुसूचित क्षेत्र नहीं हैं, वहां पर स्टेट बोर्ड का गठन किया गया है। इन समितियों की बैठक वर्ष में दो बार किए जाने का संवैधानिक प्रावधान है।

जनजातीय महिलाओं में धीरे–धीरे बढ़ रही है साक्षरता

राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम

वर्ष 2001 में राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति वित्त एवं विकास निगम को विभाजित करके राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम की स्थापना की गई। यह अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक विकास के लिए योजनाओं/परियोजनाओं को वित्तपोषित करने वाली शीर्ष संस्था है। इसका मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है–

- पात्र अनुसूचित जनजाति के लोगों को व्यवसाय, कारोबार व अन्य आर्थिक गतिविधियों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना ताकि रोजगार व आय सृजन को बढ़ावा मिले।
- उपयुक्त प्रशिक्षण के माध्यम से अनुसूचित जनजातियों के कौशल और उद्यमिता विकास का उन्नयन।

अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वनवासी (वन अधिकारों को मान्यता) कानून 2006

इस कानून को संसद ने 18 दिसंबर, 2006 को पारित किया। इसके कार्यान्वयन के लिए 31 दिसंबर, 2007 को अधिसूचना जारी की गई। इन कानून के द्वारा जनजातीय लोगों और अन्य वन निवासियों को अपने अधिकार क्षेत्र से संबद्ध वनभूमि पर खेती करने के अधिकार प्राप्त हो गए। इसके साथ ही उन्हें लघु वन उत्पादों के स्वामित्व, संग्रह, इस्तेमाल और बिक्री के अधिकार भी प्राप्त हुए हैं। उन्हें वनों के भीतर पशु चराने जैसे परंपरागत वन अधिकार भी प्रदान किए गए हैं।ये अधिकार उन जनजातीय लोगों को प्राप्त होंगे जो 13 दिसंबर, 2005 से पहले वनों में रह रहे थे और आजीविका के लिए वनों पर निर्भर हैं। इसी प्रकार 13 दिसंबर, 2005 से पहले तीन पीढ़ियों से वनों में रह रहे और आजीविका के लिए वनों पर निर्भर अन्य परंपरागत वनवासियों (गैर–अनुसूचित जनजातियों) को भी ये अधिकार प्राप्त होंगे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जनजातियों को आधुनिक विकास प्रक्रिया और राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए। इन कार्यक्रमों से जनजातियों को लाभ भी हुआ है लेकिन कई समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं। बांध, बिजलीघर, खनन, सड़क, औद्योगिक संयंत्र आदि के द्वारा विकास की जो धारा जनजातीय क्षेत्रों में बही उससे उनके प्राकृतिक और स्वछन्द जीवन में बाधा पहुंची। जनजातीय लोग प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग करते थे दुरुपयोग नहीं। लेकिन जब विकास के साधनों के साथ बाहरी लोग जनजातीय क्षेत्रों में पहुंचे तो उन्होंने प्राकृतिक संसाधनों और जनजातियों का शोषण करने के किसी भी प्रयास को हाथ से जाने नहीं दिया। इसका दुष्परिणाम जनजातियों के असंतोष के रूप में उभरा। इस असंतोष की अभिव्यक्ति अलग राज्य के आंदोलन, जनजातियों–गैर जनजातियों के बीच हिंसक संघर्ष, उग्रवाद, नक्सलवाद आदि

के रूप में हुई। इन हिंसक आंदोलनों को केंद्र व राज्य सरकारों ने कानून व्यवस्था की समस्या के रूप में देखा और इन्हें बल प्रयोग से दबाने की कोशिश की जाने लगी, लेकिन आंदोलन और उग्र होता चला गया।

वस्तुतः जनजातियों के असंतोष की जड़ में आधुनिक विकास प्रक्रिया का शोषणकारी रूप है। जनजातियों के लिए केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं का लाभ उन्हें नहीं मिला, उल्टे उनका शोषण बढ़ा। इससे गरीबी, बेरोजगारी बढ़ी। जल, जंगल, जमीन पर गैर–जनजातियों का आधिपत्य बढ़ने से उनकी सांस्कृतिक धरोहर को खतरा उत्पन्न होने लगा। अतः विकास की ऐसी रणनीति बनाने की आवश्यकता है ताकि जनजातियों की बहुसंख्यक जनसंख्या उससे लाभान्वित हो सके। यह कार्य केवल बड़े कारखानों, बांधों, बिजलीघरों के जनजातीय क्षेत्रों में स्थापित कर देने भर से नहीं होगा।

बहुसंख्यक जनजातियों को नियमित आय व रोजगार तभी मिलेगा जब उनके परंपरागत हुनर को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान से जोड़ा जाए और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कच्ची सामग्री पर आधारित लघु व कुटीर उद्योगों का बड़े पैमाने पर विकास हो। उदाहरण के लिए शहद, लाख, मोम, तेंदू पत्ता, जड़ी–बूटियां, दोना–पत्तल, कंद, महुआ, बांस, हस्तशिल्प, बागवानी, मछलीपालन, रेशमकीट पालन, बुनाई, कढ़ाई जैसे उद्यमों के लिए आधारभूत ढांचे का विकास किया जाए। जनजातियों को आधुनिक तकनीकी ज्ञान का व्यापक प्रशिक्षण दिया जाए ताकि वे अपने परंपरागत ज्ञान को कौशल–संपन्न व आधुनिक बना सकें। जनजातीय क्षेत्रों में स्वयंसहायता समूहों पर आधारित गतिविधियों को बढ़ावा देने से संसाधनों का बेहतर इस्तेमाल होगा। इन क्षेत्रों में परिवहन के साधन, स्थानीय बाजार, शीत भण्डारण, बिजली की नियमित आपूर्ति, कोल्ड चेन की व्यवस्था की जाए। इसके साथ जनजातियों की उपजों को देश–विदेश तक प्रचारित करने व पहुंचाने की एक बिचौलियाविहीन व्यवस्था अनिवार्य है। जनजातीय उत्पादों की देश–विदेश में भारी मांग है लेकिन उत्पादों की बिक्री से प्राप्त अधिकतर मूल्य बिचौलियों की जेब में चला जाता है। जब तक इस शोषणकारी व्यवस्था को बदला नहीं जाएगा तक तक जनजातियों का सर्वांगीण विकास नहीं होगा।

समग्रतः जनजातीय क्षेत्रों व जनजातियों का चहुमुंखी विकास तभी होगा जब स्थानीय परंपरा, हस्तशिल्प, क्षेत्रीय संसाधनों को सुरक्षित रखते हुए आधुनिक विकास के पथ पर चला जाए। इसी से जनजातीय क्षेत्रों में विकास की नदी बहेगी और उस नदी से पूरा देश हरा–भरा अर्थात् खुशहाल हो जाएगा।

(लेखक राजकोष समन्वय कार्यालय महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी) इलाहाबाद में अनुभाग अधिकारी हैं)
ई–मेल : bdubey01900@yahoo.com

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 100 रुपये, दो वर्ष के लिए 180 रुपये, तीन वर्ष के लिए 250 रुपये का
(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक .... दिनांक .... संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर निदेशक, प्रकाशन विभाग को नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....
पता ....
.... पिन ....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110 066

जनजातीय उपयोजना

डॉ. बद्री बिशाल त्रिपाठी

भारत की कुल जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत भाग अनुसूचित जनजातियों का है। अनुसूचित जनजातियों की कुल जनसंख्या वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार 8.43 करोड़ है। जनजातीय समूह यद्यपि देशभर में बिखरे हुए हैं तथापि उनका पर्वतीय और वन क्षेत्रों में केन्द्रीयकरण अधिक है। जनजातीय जनसंख्या, 1991 की जनगणना के अनुसार पंजाब, हरियाणा, चण्डीगढ़, दिल्ली और पांडिचेरी को छोड़कर देश के सभी राज्यों में पायी जाती है। परन्तु देश के उत्तर–पूर्व के राज्यों में इनका केन्द्रीयकरण अधिक है। मिजोरम में 94.8 प्रतिशत जनसंख्या ज़नजातीय है। इसी प्रकार लक्षद्वीप में 93 प्रतिशत तथा दादरा और नगर हवेली में 79.0 प्रतिशत जनसंख्या जनजातीय है। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश (23.3 प्रतिशत), उड़ीसा (22.2 प्रतिशत), गुजरात (141.9 प्रतिशत), असम (12.9 प्रतिशत), राजस्थान (12.4 प्रतिशत), महाराष्ट्र (9.3 प्रतिशत), बिहार (7.7 प्रतिशत), आन्ध्र प्रदेश (6.3 प्रतिशत), तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (5.5 प्रतिशत) में जनजातीय जनसंख्या का केन्द्रीयकरण है।

केंद्र सरकार जनजातीय विकास की महत्वपूर्ण योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता देती है

देश में नियोजन आरंभ के समय जनजातीय क्षेत्रों के विकास की कोई विशिष्ट योजना तैयार नहीं की गई। यह सोचा गया था कि आर्थिक प्रगति की दर तीव्र होने पर उसके लाभ सब तक पहुंचेंगे तथापि प्रथम योजना से ही जनजातीय क्षेत्रों के अति पिछड़ेपन के परिप्रेक्ष्य में उनके विकास हेतु विशिष्ट कार्यक्रम आरंभ किए गए। प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जनजातीय विकास के लिए पांच सूत्रीय कार्यक्रम का उल्लेख किया जिन्हें 'जनजातीय पंचशील' कहा जाता है। 'जनजातीय पंचशील' के निम्नलिखित 5 तत्वों के आधार पर 1956 में जनजातियों के विकास की रूपरेखा बनायी गई।

- जनजातीय जनसंख्या को अपने परिवेश में ही विकसित होने दिया जाना चाहिए, उन पर कुछ भी आरोपित करने से बचा जाए।
- जनजातीय क्षेत्रों की भूमियों और वनों पर जनजातियों का अधिकार उचित है।
- जनजातियों के प्रशासन और विकास के लिए उन्हीं लोगों की टीम विकसित करनी चाहिए।
- जनजातीय क्षेत्रों में प्रशासन की गहनता पर विशेष जोर नहीं देना चाहिए। इनकी धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिए।
- जनजातीय क्षेत्रों में किए गए विकास कार्यों का मूल्यांकन विकसित किए गए मानवीय पूंजी एवं चरित्र के आधार पर किया जाना चाहिए न कि व्यय की गई राशि और उत्पादन आंकड़ों के आधार पर।

जनजातीय विकास का उक्त दृष्टिकोण वेरियर एल्विन की इस मान्यता की पुष्टि करता है कि जनजातियों का विकास उनकी अपनी प्रतिभा की सीमाओं में ही संभव है। इससे पृथक अब यही स्वीकृत किया जाने लगा है कि जनजातियों की विशिष्टताओं को बचाए रखते हुए उन्हें राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा से जोड़ा जाना चाहिए। इसी क्रम में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 43 विशेष बहूद्देशीय जनजातीय विकासखंड 1960–61 में बनाए गए जिन्हें बाद में जनजातीय विकासखंड कहा गया है। जनजातीय विकासखंड 25 हजार लोगों पर बनाया गया था जबकि सामान्यतः विकासखंड 65 हजार लोगों पर बनाये जाते हैं। तीसरी पंचवर्षीय योजना में तीव्र आर्थिक प्रगति द्वारा जनजातीय विकास की नीति क्रियान्वित होती रही। इस नीति की आलोचना की गई और वैकल्पिक विकास युक्ति की आवश्यकता अनुभव की गई।

सहकारिता ने सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को प्रभावित

किया है। जनजातीय जीवन पर भी सहकारिता का प्रभाव हुआ है। योजना के आरंभिक वर्षों में विशेष प्रयोजन वाली सहकारी समितियां क्रियाशील थी। परन्तु इनका जनजातीय जीवन पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं हुआ। जनजातीय समस्याओं के अध्ययन के लिए केन्द्र सरकार ने 1971 में श्री एस.के. बाबा की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल नियुक्त किया था। इस अध्ययन दल ने जनजातीय क्षेत्रों में बहूद्देशीय सहकारी समितियों (लैम्प्स) की स्थापना की सिफारिश की थी। चतुर्थ योजना में वृहदाकार बहूद्देशीय सहकारी समितियों' (लैम्प्स) बनायी गई। लैम्पस का मुख्य उद्देश्य जनजातियों को एक ही स्थान पर विभिन्न सुविधायें उपलब्ध कराना है। समिति ने सिफारिश की कि लैम्पस के माध्यम से कृषि उत्पादन बढ़ाने, ऋण उपलब्ध कराने तथा उत्पादन के क्रय–विक्रय की व्यवस्था की जानी चाहिए, ताकि जनजातियों को अपनी समस्याओं के लिए विभिन्न स्थानों पर न जाना पड़े और एक ही संगठन के माध्यम से उनके विविध उद्देश्य पूरे हो जाएं।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना में लैम्पस को जनजातीय उपयोजना अपनाने का निर्णय लिया गया। छठीं योजना में लैम्पस मुख्य रूप से पहाड़ी और जनजातीय क्षेत्रों में ही क्रियाशील थे। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में जनजातीय जनसंख्या के रहन–सहन के स्तर में त्वरित सुधार करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया। 1985 से गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के माध्यम से जनजातीय क्षेत्रों में अवस्थापनागत सुविधाओं के विकास और अधिकांश जनजातीय परिवारों को गरीबी–रेखा से ऊपर उठाने का प्रयास किया गया। जनजातीय जनसंख्या की बिचौलियों से रक्षा करने, उनके द्वारा एकत्रित लघु वनोपज और उनके अतिरिक्त कृषि उत्पाद को लाभकारी कीमत दिलाने के लिए 1987 में जनजातीय सहकारी विपणन संघ की स्थापना की गई और 1989 में 'राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम' स्थापित किया गया। जनजातीय सशक्तिकरण, तथा उनके कल्याण और विकास कार्यक्रमों को सुदृढ़ करने के लिए 1999 में जनजातीय मामलों का पृथक मंत्रालय स्थापित किया गया। जनजातियों के लिए 2001 में पृथक 'राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम' स्थापित किया गया। जनजातियां वनों से पोषित थीं और वनों को पोषित करती थीं। वे वनों के स्टॉक से नहीं अपितु वनों के प्रवाह से अपनी आजीविका चलाते थे। वनों से उनका अपनापन था, लगाव था। परन्तु क्रमशः वनों से जनजातियों का विस्थापन हुआ। इस समस्या के समाधान और वन भूमियों पर उनका परम्परागत अधिकार प्रदान करने के लिए शेड्यूल्ड ट्राइब एण्ड अदर ट्रेडिशनल फारेस्ट ड्वेलर (रिकगनीशन ऑफ फारेस्ट राइट) अधिनियम, 2006 पारित किया गया।

प्रत्येक अर्थव्यवस्था की आर्थिक नीति का लक्ष्य संतुलित विकास पथ की ओर अग्रसर होना है। यह नीति अंतर्क्षेत्रीय और अंतर्वर्गीय आर्थिक असमानताओं को समाप्त करने पर जोर देती है। इस समस्या के समाधान में क्षेत्रीय नियोजन, जो प्रमुख रूप से स्थान विषयक होता है, की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। स्थान विषयक नियोजन के माध्यम से किसी क्षेत्र के संसाधनों की सम्यक जानकारी होती है और स्थानीय जरूरतों के अनुसार जनजातीय क्षेत्रों के सम्यक विकास के लिए जनजातीय उपयोजना आरंभ की गई। देश की जनजातीय जनसंख्या में सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन होने तथा शेष समाज से अधिक अनुक्रिया न होने के कारण उनका रहन–सहन का स्तर अपेक्षाकृत अत्यन्त नीचा है। उनके अपने विशिष्ट जीवन मूल्य और जीवनशैली होती है।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना में जनजातीय क्षेत्रों के विकास की एक नवीन और विशेष कार्ययोजना 1974 में बनाई गई जिसे जनजातीय उपयोजना कहा जाता है। जनजातीय उपयोजना में जनसंख्या के अनुपात में संसाधन प्रदान करने के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता (एस.सी.ए.) की योजना भी 1974 में आरम्भ की गई। जनजातीय उपयोजना में प्रत्येक राज्य और जनजातीय क्षेत्र द्वारा अपने क्षेत्र की जनजातीय जनसंख्या के विकास के लिए एक 5 वर्षीय विकास योजना बनायी जाती है। जनजातीय उपयोजना की इकाई एक विशिष्ट क्षेत्र माना जाता है जहां जनजातीय जनसंख्या की बहुलता है। इसके माध्यम से प्रत्येक चयनित क्षेत्र के विकास की योजनाएं बनायी जाती हैं। सामान्यतः जनजातीय उपयोजना बनाने के लिए निम्नलिखित तीन प्रकार के क्षेत्रों की पहचान की जाती है–

- जनजातीय जनसंख्या बाहुल्य राज्य व क्षेत्र।
- राज्य में जनजातीय सघनता वाले क्षेत्र।
- राज्य का वह भाग जहां जनजातियां बिखरी हैं।

इस समय जनजातीय उप–योजना के अंतर्गत देश के 20 राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों में विकास योजनायें चलाई जा रही हैं। जनजातीय विकास उपयोजनायें 194 समन्वित जनजातीय

विकास परियोजनाओं, परिवर्तित क्षेत्र विकास उपागम (माडा) के अंतर्गत 259 क्षेत्र, 82 क्लस्टर क्षेत्र और 75 अति प्राचीन जनजातीय समूहों की विकास योजनाओं के माध्यम से चलाई जा रही हैं। जनजातीय बहुलता वाले राज्यों की सम्पूर्ण योजना जनजातीय जनसंख्या के लिए ही चलाई जाती हैं। मेघालय, मिजोरम, नगालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश, दादरा और नगर हवेली की अधिकांश जनसंख्या जनजातीय है। अतः उनकी विकास योजना का सम्पूर्ण प्रारूप जनजातियों के विकास के लिए ही है। अतः वहां पृथक उप योजनायें नहीं चलायी जा रही हैं। इस प्रकार यही कहा जा सकता है कि जनजातीय विकास उपयोजना की क्रियाविधि राज्य एवं संघ शासित प्रदेशों के अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों के लिए ही सीमित है।

जनजातीय उपयोजना की कार्यविधि और कार्य अवधि पंचवर्षीय योजनाओं की तरह 5 वर्ष होती है। अन्य योजनाओं की भांति जनजातीय उपयोजना के वित्तीय संसाधन की योजनायें, विशेष केन्द्रीय सहायता, उपयोजना सकेन्द्रीय योजना, केन्द्र प्रायोजित कार्यक्रमों और संस्थागत क्षेत्र के आधार पर जनजातीय उप योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता देता है। केन्द्र सरकार जनजातीय विकास की कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं के लिए वित्तीय सुविधा प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त सहकारी क्षेत्र की बैंकों और वाणिज्यिक बैंकों से भी उपयोजनाओं के लिए संसाधन प्राप्त होते हैं। पांचवीं पंचवर्षीय योजना के बाद सघन प्रयास किये गए ताकि जनजातीय जनसंख्या का रहन–सहन का स्तर ऊपर उठ सके तथा भूमि हस्तांतरण, ऋणग्रस्तता और वन क्षेत्रों से होने वाले विस्थापन आदि के रूप में होने वाले शोषण को समाप्त किया जा सके। इसके लिए योजनाओं में क्रमशः अधिक धनराशि जनजातीय उपयोजना पर व्यय की गयी है। छठीं और सातवीं पंचवर्षीय योजना में जनजातीय उपयोजना के अंतर्गत क्रमशः 4694 करोड़ रुपये और 7921 करोड़ रुपये व्यय किए गए। आठवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में जनजातीय उपयोजना के अंतर्गत लगभग 15000 करोड़ रुपये व्यय किए गए हैं। दसवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002) में जनजातीय उपयोजना हेतु केन्द्रीय योजना से 6462 करोड़ रुपये और राज्य योजनाओं से 22314 करोड़ रुपये आवंटित किए गए थे। इसी प्रकार विशेष केन्द्रीय सहायता के माध्यम से 2010 करोड़ रुपये का प्रावधान जनजातीय उपयोजना के लिए किया गया था। विशेष केन्द्रीय सहायता की समस्त राशि राज्यों को हस्तांतरित कर दी जाती है ताकि परिवारोन्मुख आय सृजन कार्यक्रम आरंभ किए जा सकें, अति आवश्यक आधारभूत संरचना विकसित की जा सके तथा अति प्राचीन जनजाति समूहों और वन क्षेत्र के गांवों का विकास किया जा सके। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में जनजातीय उप–योजना के अंतर्गत हुए व्यय का अधिकांश भाग राज्य योजनाओं से प्राप्त हुआ है। इस प्रकार उपयोजनाओं के लिए वित्त पूर्ति करने में विशेष केन्द्रीय सहायता और संस्थागत वित्त का अंश अपेक्षाकृत कम हो रहा है।

जनजातियों को अपने परिवेश में ही विकसित होने दिया जाना चाहिए

जनजातीय उपयोजना को देश के सीमान्तिक लोगों के विकास का एक प्रमुख उपागम माना गया है। जनजातीय उप योजना के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं– प्रथम, जनजातीय क्षेत्रों का समाजार्थिक विकास और द्वितीय जनजातीय परिवारों का विकास। इस आधार पर जनजातीय उपयोजना के कुछ उल्लेखनीय पक्ष हैं। जनजातीय उपयोजना जनजातीय क्षेत्रों और जनजातीय परिवारों के लिए संसाधन एकत्र करने में सहायक रही है। उपयोजना का दूसरा प्रधान गुण यह है इससे जनजातीय जनसंख्या संकेन्द्रण वाले स्थानों की पहचान की गई है। जनजातीय उपयोजना के माध्यम से प्रशासन संरचना को भी अधिक अनुकूल बनाने का प्रयास किया गया है।

जनजातीय उप–योजना की विभिन्न सफलताओं के साथ इसकी कतिपय विसंगतियां भी रही हैं। क्रियान्वयन की दृष्टि से यह मात्र क्षेत्रीय नियोजन रह गया है। इसके अधिकांश व्यय का लाभ किसी उपयोजना क्षेत्र के जनजातीय और गैर–जनजातीय जनसंख्या को मिला है। पांचवीं योजना के उप–योजना क्षेत्र के व्ययों का विश्लेषण यही प्रदर्शित करता है कि व्यय का अधिकांश भाग अवस्थापना सृजन के लिए रहा है। विनियोग राशि के केवल 5 प्रतिशत भाग का प्रयोग लाभार्थी उन्मुख रहा है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में जनजातीय विकास उपयोजना के निष्पादन के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि उपयोजना के कुल व्यय का 60 प्रतिशत भाग अवस्थापना सृजन के लिए, 20 प्रतिशत भाग सामाजिक सेवाओं को विकसित करने के लिए व्यय किया गया। केवल 20 प्रतिशत व्यय से जनजातीय जनसंख्या को प्रत्यक्ष लाभ हुआ है। इस प्रकार उपयोजना व्यय के 80 प्रतिशत भाग का लाभ 'क्षेत्र' को मिला है जिसमें जनजातीय और गैर–जनजातीय जनसंख्या रहती है। इस आधार पर जनजातीय उपयोजना का स्वरूप विशेषकर क्षेत्रीय नियोजन का हो जाता है। गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का कुछ लाभ जनजातीय परिवारों का प्राप्त हुआ है। कई परिवार गरीबी रेखा से ऊपर आने में सफल हुए हैं तथापि गरीबी उन्मूलन और जनजातीय जनसंख्या के उन्नयन के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है।

वर्तमान स्तर

अनुसूचित जनजातियों के विकास कार्यक्रमों से लक्ष्य समूह जनसंख्या के आर्थिक स्तर में सुधार आया है। उनकी परंपरागत रूढ़ियों के बंधन शिथिल हुए हैं। विकास कार्यक्रमों के आंकड़े यह प्रदर्शित करते हैं कि गरीबी की व्यापकता और सघनता घटी है, साक्षरता का स्तर बढ़ा है, औसत जीवन अवधि बढ़ी है, संगठित क्षेत्र में कर्मचारियों की संख्या बढ़ी है। परन्तु निरपेक्ष आधार पर यदि देखा जाए तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस वर्ग के लोगों में गरीबी और पिछड़ेपन की समस्या अत्यन्त गंभीर रूप में विद्यमान है।

अनुसूचित जनजाति के लोग अभी भी समाज के सबसे अधिक गरीबों की कोटि में हैं। यही अनुमान लगाया गया है कि 1987–88 में अनुसूचित जनजाति के 52.6 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे थे जबकि उस वर्ष अनुसूचित जाति के 44.7 प्रतिशत और समस्त जनसंख्या के 33.4 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे थे। यद्यपि अनुसूचित जनजाति के 72.4 प्रतिशत लोग 1977–78 में गरीबी रेखा से नीचे थे। उनके इस प्रतिशत में सुधार आया है। वर्ष 1999–2000 में ग्रामीण क्षेत्र की 45.86 प्रतिशत और नगरीय क्षेत्र की 34.75 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे थी। इस वर्ग के अधिकांश लोगों के पास अपनी कोई भूमि नहीं है और वे लोग खेतिहर मजदूर भूमिहीन श्रमिक तथा असंगठित क्षेत्र के विभिन्न निर्माण और विनिर्माण कार्यों में अकुशल श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं। दसवीं पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट में यह स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि जनजातीय जनसंख्या में गरीबी का मुख्य कारण उनकी भूमिहीनता, उत्पादन परिसम्पत्ति की कमी तथा धारणीय रोजगार और न्यूनतम मजदूरी तक उनकी कम पहुंच का होना है। उनकी औसत मजदूरी न्यूनतम मजदूरी स्तर से भी कम है। भूमि और वनों से उनका अलगाव जारी है। विकास कार्यों का तदर्थ लाभ ही इनके अधिकांश परिवारों को मिला है।

तालिका–1 गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या

(प्रतिशत में)

वर्ष	समस्त जनसंख्या	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति
1977–78	51.2	64.6	72.4
1983–84	40.4	53.1	68.4
1987–88	33.4	44.7	52.6

जनजातीय जनसंख्या में शिक्षा का स्तर अत्यन्त ही निम्न है जबकि शिक्षा व्यक्ति को समर्थ और अधिक उपयोगी बनाने का प्रमुख साधन है। शिक्षा व्यक्ति की प्राप्तियां और उत्पादकता बढ़ाती है। कुछ व्यष्टिपरक अध्ययनों से निष्कर्ष निकलता है कि

तालिका–2 अनुसूचित जनजाति में साक्षरता स्तर

वर्ष	समस्त जनसंख्या	अनुसूचित जनजाति	अनुसूचित जनजाति में महिलाओं की साक्षरता
1961	27.86	8.53	–
1971	29.45	11.30	4.58
1981	36.23	16.35	8.04
1991	52.21	29.60	18.19
2001	65.38	-	-

कार्य अवधि में एक वर्ष के शिक्षण से मजदूरी में 12 प्रतिशत और कुल उत्पादन में 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। योजनाकाल में भारत में साक्षरता दर में तीव्र वृद्धि हुई है। परन्तु शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना है। 1981 तक अनुसूचित जनजाति के केवल 16.35 प्रतिशत लोग साक्षर थे जबकि उस वर्ष समस्त जनसंख्या का अपेक्षाकृत अधिक भाग साक्षर था।

अन्डमान का आदिवासी तीर से मछली मारता हुआ

शिक्षा स्तर में क्षेत्रीय विषमता भी बहुत अधिक है। आन्ध्र प्रदेश में जनजातीय जनसंख्या में साक्षरता का प्रतिशत केवल 7.82 है। समस्त जनजातीय समाज में महिलाओं में साक्षरता स्तर नीचा है। यह अनुमान है कि जनजातियों में महिलाओं की साक्षरता का स्तर 1971 में 4.58 प्रतिशत और 1991 में 18.2 प्रतिशत रहा है। अनुसूचित जनजातियों में एक ओर स्थानीय परिसम्पत्ति की कमी है तो दूसरी ओर इनमें साक्षरता का स्तर अत्यन्त नीचा है। इसलिए इनकी आय अर्जन क्षमता निम्नस्तरीय है। इस वर्ग के अत्यन्त कम लोग प्राविधिक और उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। इस कारण रोजगार के नवीन अवसरों में इनका समावेश नगण्य रहता है। अर्थव्यवस्था में होने वाले संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण रोजगार अवसरों के स्वरूप में भी परिवर्तन हो रहा है जिसके लिए नवीन प्रकार की शिक्षा सुविधा अपेक्षित है। जनजातीय जनसंख्या में इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था अत्यन्त कम है। इनमें से अधिकांश बच्चों की शिक्षा प्राथमिक स्तर पर ही समाप्त हो जाती है। अल्प पोषण और कुपोषण की समस्या बनी रहती है।

जनजातियों के विकास के लिए चलाए गए उपरोक्त विभिन्न कार्यक्रम समस्या के अत्यल्प भाग को ही स्पर्श कर सके हैं। व्यापक जनसमुदाय की जरूरतें भी पूरी नहीं हो पा रही हैं। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने इनके पिछड़ेपन के कारणों का उल्लेख करते हुए बताया है कि जनजातियों की पहचान की कमी, व्यापक ऋणग्रस्तता, अवस्थापनागत सुविधाओं की कमी, वनों और कृषि भूमियों पर से बड़े पैमाने पर अलगाव एवं अशिक्षा के कारण है। इनके कारण ही जनजातीय विकास में बाधा आयी है। जनजातीय असंतोष भी इसी सामाजिक–आर्थिक पिछड़ेपन का परिणाम है। गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, अल्प पोषण एवं कुपोषण का दुष्चक्र इन्हें ऊपर नहीं उठने दे रहा है।

विभिन्न आधुनिक विकास जन्य वस्तुएं इनकी जीवन पद्धति में प्रवेश नहीं कर सकी हैं। शैक्षिक प्रसार और विभिन्न विकास कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप इनमें हानिकारी रूढ़ियों के बंधन अवश्य शिथिल हुए हैं। जनजातीय जनसंख्या के जीवन स्तर और आय–स्तर का अत्यन्त निम्नस्तरीय प्रारूप यह स्पष्ट करता है कि 'विकास के लिए विकास' की युक्ति गरीब जनसंख्या के जीवन स्तर में अपेक्षित सुधार नहीं कर सकी। इस युक्ति के लाभ विशेषकर उन लोगों और क्षेत्रों को मिले जो पहले ही अपेक्षाकृत श्रेयस्कर स्थिति में थे।

आज आवश्यकता इस बात की है कि विकास प्रक्रिया का स्वरूप उन लोगों के प्रति अधिक अनुक्रियाशील बनाया जाए जो आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़े रह गए हैं और अधिकांश जनजातीय जनसंख्या इसी वर्ग में है। उनके परम्परागत ज्ञान की रक्षा की जाए और उसका उन पर वैधानिक अधिकार प्रदान किया जाए। बल्कि ग्रामीण विकास का यह आशय नहीं कि उसे नगर या कस्बा बना दिया जाए बल्कि गांव में गांव की आर्थिक क्रियाओं को ही समर्थ बनाना चाहिए। उसी प्रकार जनजातीय जनसंख्या के विकास प्रक्रिया को इस प्रकार निर्धारित करना चाहिए ताकि वे अपनी सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विरासत अक्षुण्ण बनाए रखते हुए राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा में अपना सम्यक स्थान बना सकें।

(लेखक इलाहाबाद डिग्री कॉलेज के अर्थशास्त्र विभाग में रीडर हैं।)

झारखंड की आदिम जनजातियांः एक अवलोकन

डॉ. अमर कुमार चौधरी व चित्रलेखा सिन्हा

आदिम जनजातियां हमारे समाज का वह हिस्सा है जो विकास से कोसों दूर हैं। मनुष्य ने इतना विकास कर लिया है, हमारा समाज सुख–सुविधाओं से परिपूर्ण हो गया है परन्तु आदिम जनजातियां इस विकास एवं इन सुख सुविधाओं से पूर्णतः वंचित हैं। आदिम जनजातियों के समाज की स्थिति ज्यों–की–त्यों है। 2001 जनगणना के अनुसार, देश में जनजातीय जनसंख्या 8.43 करोड़ है जो कुल जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत है। अधिकांश जनजातियां मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, उड़ीसा, झारखंड एवं गुजरात राज्य में हैं। इनकी उपस्थिति हरियाणा, दिल्ली, पंजाब, चंडीगढ़ एवं पांडिचेरी को छोड़कर लगभग सभी राज्यों में है।

जनजातीय समुदाय में कुछ जनजातियां ऐसी हैं जिनकी संख्या घट रही है, जो कृषि के लिए प्राचीन साधनों का उपयोग करते हैं, जो आर्थिक दृष्टि से बहुत ही पिछड़े हैं एवं जिनके समाज में साक्षरता दर बहुत कम है। वैसी जनजातियों को आदिम जनजाति की श्रेणी में रखा गया है। देश के 17 राज्यों में 75 आदिम जनजातीय समूहों की पहचान की गई है। आदिम जनजातियों के समाज में हर दृष्टिकोण से पिछड़ापन है जो एक चिंता का विषय है। आदिम जनजातियां देश के अविकसित क्षेत्रों में रहती हैं एवं ये लोग दूर दराज के पहाड़ों एवं जंगलों में रहना पसंद करते हैं। इन्हें एकांत एवं शांत जीवन अच्छा लगता है। आदिम जनजातियां भोजन एवं अपने भरण–पोषण के लिए प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर होती हैं। पहाड़ी एवं जंगली क्षेत्रों में रहने के कारण ये समाज से अलग–थलग पड़ गए हैं। इन तक किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं पहुंच पाती है। ये बहुत ही अभाव में जी रहे हैं।

आदिम जनजातियां हमारे इस विकसित समाज का आधार हैं जिन्हें बचाने की आवश्यकता है। भारत सरकार ने अक्टूबर 1999 में इनके विकास के लिए एक अलग जनजातीय कार्य मंत्रालय की स्थापना की है। इसका उद्देश्य जनजातियों का नियोजित ढंग से सामाजिक – आर्थिक विकास करना है। इस हेतु केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

झारखंड में जनजातियों के लिए निर्मित सरकारी आवास

झारखंड की जनजातियां

झारखंड राज्य की स्थापना का एक प्रमुख उद्देश्य यहां की जनजातियों को मुख्यधारा से जोड़कर इनका सामाजिक एवं आर्थिक विकास करना है। झारखंड प्राचीनकाल से जनजातियों का निवास स्थल रहा है। झारखंड की कई जनजातियों ने अंग्रेजों के खिलाफ मुहिम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिनमें से प्रमुख जनजातीय विद्रोह हैं : संथाल विद्रोह, बिरसा मुंडा आंदोलन, चुहाड विद्रोह, तमाड विद्रोह, हो विद्रोह, कोल विद्रोह, आदि। 2001 की जनगणना के अनुसार झारखंड की कुल जनसंख्या 2.69 करोड़ है। झारखंड में कुल जनसंख्या का 26.3 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या है। 1991 की जनगणना के अनुसार, झारखंड में 30 जनजातीय समुदाय थे। झारखंड गठन के पश्चात दो और समुदायों (कोल एवं कावर) को जनजाति की श्रेणी में शामिल किया गया है। अतः वर्तमान में 2001 जनगणना के अनुसार, झारखंड में 32 प्रकार के जनजातीय समुदाय है। ये समुदाय इस प्रकार हैं : असुर, बैगा, बंजारा, बथुड़ी, बेदिया, बिझिया, बिरहोर, बिरजिया, चेरों, चिक, बड़ाईक, गोंड, गोराईत, हो, कोरमाली, खरवार, खोड़ किसान, कोरा, कोरवा, लोहरा, माहली, मालपहाड़िया, मुंडा, उरांव, परहिया, संथाल, सौरिया – पहाड़िया, सावर, भूमिज, कोल, कनवार एवं खड़िया। इन जनजातीय समुदायों में से नौ समुदायों को आदिम जनजातीय समूह के अंतर्गत रखा गया है। आदिम जनजातीय समूह में असुर , बिरहोर, कोरवा, बिरजिया, मालपहाड़िया, सौरिया

पहाड़िया, परहिया, सावर एवं हिलखड़िया (पहाड़ी खड़िया) शामिल हैं। जनजातियों में संथाल जनजाति की जनसंख्या सबसे अधिक है जबकि आदिम जनजातियों में सौरिया पहाड़िया की जनसंख्या सबसे ज्यादा है। आदिम जनजातियो में शिक्षा का घोर अभाव है। मुख्य रूप से बिरहोर जनजाति समुदाय में शिक्षा का स्तर बहुत ही निम्न है। इसका प्रमुख कारण इनका धुमन्तु जीवन है। चूंकि झारखंड की कुल जनसंख्या का 26.3 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या है इसलिए झारखंड के सामाजिक – आर्थिक विकास एवं उन्नति के लिए किए जाने वाले प्रयास तभी सकारात्मक परिणाम देगें जब इस प्रयास में जनजातीय विकास एवं उन्नति को शामिल किया जाएगा।

झारखंड की आदिम जनजातियां

झारखंड राज्य में नौ आदिम जनजातीय समुदाय हैं। आदिम जनजातियों की जरूरतें एवं समस्याएं अन्य अनुसूचित जनजातियों से अलग होती हैं। इनकी संख्या कम है। ये जंगली एवं पहाड़ी क्षेत्रों में रहते हैं। झारखंड की आदिम जनजातियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

असुरः जनजाति झारखंड की प्राचीन जनजातियों में से एक है। यह प्रोटो ऑस्ट्रेलायड जाति के हैं। जनगणना 2001 के अनुसार, इनकी जनसंख्या 9094 है। इनका मुख्य निवास क्षेत्र रांची, लोहरदगा, गुमला, सिंहभूम, धनबाद हैं। ये संयुक्त परिवार में रहते हैं। गांवों में इनका घर एक जगह समूह में न होकर जहां–तहां होता है। इनके घरों की दीवारें मिट्टी की एवं छप्पर या फूस की छत होती है। तीन चौथाई असुर खेती करते हैं एवं एक चौथाई असुर कृषि कार्य में संलग्न मजदूर हैं। निर्धनता के कारण ये कृषि कार्य ठीक ढंग से नहीं कर पाते हैं। ये चावल, मक्का, सब्जियां आदि उपजाते हैं। ये कर्ज में डूबे हुए हैं और इनकी आर्थिक स्थिति कमजोर है।

बिरहोरः एक खानाबदोश जनजाति है। बिरहोर का शाब्दिक अर्थ ही होता है जंगली मानव। ये मौसम के अनुसार अपना स्थान परिवर्तन करते रहते हैं। ये घुमन्तु जीवन जीते हैं। झारखंड में इनकी संख्या 6535 है। ये मुख्य रूप से हजारीबाग, चतरा, कोडरमा, रांची, गुमला, गिरिडीह एवं सिंहभूम में पाए जाते हैं। बिरहोरों की बस्ती को 'टंडा' कहा जाता है। ये झोपड़ियों में रहते हैं। इनकी झोपड़ियां टहनियों एवं पत्तों से वृत्तनुमा आकार में बनी होती हैं। इन झोपड़ियों की विशेषता यह है कि पत्तों से निर्मित होने के बावजूद भारी वर्षा में भी एक बूंद पानी नहीं टपकता है। बिरहोर भोजन के लिए जंगल में घूम घूमकर कंदमूल, फल आदि एकत्रित करते हैं और जंगली जानवरों जैसे सूअर, चुआ, बंदर, बकरा आदि का शिकार करते हैं। शिकार ही इनके भोजन का मुख्य स्रोत है। ये अपने भरण–पोषण के लिए जंगल पर निर्भर हैं। कुछ बिरहोर खेती करते हैं और मोटा अनाज उपजाते हैं। परंतु इनकी संख्या बहुत कम है। बिरहोरों ने आज भी अपनी घुमंतु प्रवृत्ति को नहीं छोड़ा है। इनके समाज में किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं है। ये सुविधा विहिन समाज में घोर अभाव में जीवन जी रहे हैं। इनकी संख्या लगातार घटती जा रही है।

कोरवाः जनजाति प्रोटो ऑस्ट्रेलायड जाति की है। इनका मुख्य निवास क्षेत्र गढ़वा, गुमला, पलामु एवं संथालपरगना है। झारखंड में इनकी संख्या 24,027 है। ये लोग बहुत ही अच्छे शिकारी होते हैं। ये भी घुमन्तु जीवन जीते हैं। ये लोग जंगली उत्पादों, मधु, शिकार, मजदूरी आदि पर निर्भर रहते हैं। कुछ कोरवा जनजाति के लोग खेती करते हैं और मक्का, तील, बीन आदि उपजाते हैं। परंतु साधन के अभाव में उत्पादन इतना कम होता है कि इनका गुजर बसर भी नहीं हो पाता है। ये अपने घरों की दीवारों को गीली मिट्टी या गोबर से पोतते हैं और इनकी छतें फूस की होती हैं। कोरवा जनजाति समुदाय में समस्याओं को सुलझाने के लिए इनका सामाजिक संगठन होता है।

बिरजियाः जनजाति झारखंड में पलामू, रांची, गढ़वा, गुमला, लोहरदगा में पाई जाती है। इस जनजाति के अधिकांश लोग खानाबदोश होते हैं। बहुत कम लोग खेती करते हैं। झारखंड में इनकी जनसंख्या 5443 है। इनकी बस्ती में घरों की संख्या कम होती है। इनके घरों की दीवार पत्थरों की एवं छत फूस की होती

झारखंड में आदिम जनजातियों का निवास क्षेत्र (जिला का नाम)

आदिम जनजातियां	निवास क्षेत्र
असुर	रांची, लोहरदगा, पलामू, गुमला
बिरहोर	हजारीबाग, चतरा, कोडरमा, रांची, सिंहभूम, गिरिडिह, गुमला
कोरवा	गढ़वा, गुमला, पलामू, संथाल परगना
बिरजिया	पलामू,रांची, गढ़वा, गुमला, लोहरदगा
माल पहाड़िया	दुमका
सौरिया पहाड़िया	गोडा, संथाल परगना
परहिया	गढ़वा, पलामू
सावर	सिंहभूम
हिल खड़िया	सिंहभूम

(स्रोत : झारखंड एक अध्ययन, डॉ. भूपाल कुमार महतो, प्रतियोगिता साहित्य)संस्करण 2006, पृ0 सं0 105

है। बिरजिया जनजाति के लोग जंगली जानवरों को खाते हैं जैसे हिरण, बकरी, भैंस, सांप, छिपकली, चूहा, मेंढक, भालू, मोर एवं पक्षी आदि।

माल पहाड़िया: द्रविड़ मूल की जनजाति है। ये पहाड़ी मानव होते हैं। ये मुख्यतः दुमका, साहेबगंज, देवघर, गोडडा जिलों में पाए जाते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले माल पहाड़िया जनजाति के लोग जीविकोपार्जन के लिए जंगली उत्पादों एवं शिकार पर निर्भर होते हैं। जो लोग मैदानी इलाकों में रहते हैं, वे लोग कृषि कार्य करने लगे हैं। ये अनाज एवं सब्जी की खेती करते है। ये लोग गाय एवं मुर्गा पालन का कार्य भी करते हैं। इनके घरों की दीवार मिट्टी की एवं छते पत्तियों, टहनियों, घास – फूस की होती हैं। इनके गांव पहाड़ी श्रृंखलाओं के शिखर पर स्थित होते हैं। झारखंड में इनकी संख्या 60,783 है।

सौरिया पहाड़िया: पहाड़िया जनजाति का ही एक प्रकार है। पहाड़ों पर रहने के कारण इन्हें पहाड़िया कहा गया। ये झारखंड में गोडडा एवं संथाल परगना जिले में पाए जाते हैं। ये लोग पहाड़ी क्षेत्रों में एवं पहाड़ों के शिखर पर निवास करते हैं। कृषि इनका मुख्य पेशा है। ये चावल, मक्का, वीन, कुरथी आदि उपजाते हैं। इन्होंने अब सब्जी एवं मौसमी फलों को उपजाना भी शुरू किया है। साधन के अभाव में उपज पर्याप्त नहीं होती है। ये अपने भोजन के लिए कृषि पर निर्भर होते हैं। कृषि से जीविका नहीं चल पाने के कारण ये शिकार भी करते हैं। लेकिन ये अच्छे शिकारी नहीं होते हैं। झारखंड में इनकी संख्या 61,121 है। ये जनजाति पहाड़ों के शिखर पर एवं वनों से घिरी सतह पर घर बनाती है। इनके घरों की दीवारे मिट्टी की एवं छत घासफूस से बनी होती है। इनका घर चतुर्भुज आकार में बना होता है।

परहिया जनजाति: मुंडा जनजाति की एक शाखा है। अधिकांश परहिया जनजाति पलामू एवं गढ़वा में पाए जाते हैं। इसके अलावा ये हजारीबाग, चतरा, गिरिडीह, रांची आदि जिलों में भी पाए जाते हैं। ये प्रोटो ऑस्ट्रेलायड जनजाति के हैं। इनका मुख्य निवास स्थान पहाड़ी क्षेत्र होता है। परहिया जनजाति समुदाय निर्धन एवं सुविधाविहिन है। इनकी जनसंख्या 13,848 है।

पेयजल एवं सिंचाई हेतु सार्वजनिक कुआं

सावर: की संख्या झारखंड में 9904 है। ये मुख्यतः सिंहभूम में पाए जाते हैं। सावर छोटे–मोटे किसान एवं कृषि मजदूर होते हैं। इनके घर के नजदीक भूमि का छोटा हिस्सा होता है जिस पर ये कृषि कार्य करते हैं। अधिकांश लोग भूमिहीन हैं और जीविकोपार्जन के लिए मजदूरी एवं जंगली उत्पाद पर निर्भर होते हैं। ये शिकार करते हैं एवं देशी शराब बनाते हैं। इनका घर चतुर्भुज आकार का होता है एवं दीवार मिट्टी की एवं छत फूस की होती है।

हिलखड़िया: यह जनजाति खड़िया जनजातीय समुदाय की एक शाखा है। ये लोग मुख्य रूप से सिंहभूम जिला में पाए जाते हैं। इन लोगों का गांव पहाड़ों पर स्थित होता है। ये लोग एक महत्वपूर्ण आदिम जनजाति समुदाय है। हिलखड़िया अपने भरण – पोषण के लिए जंगली कंदमूल, फल एवं जानवरों पर निर्भर होते हैं। ये लोग एक जगह मिलजुल कर रहना पसंद नहीं करते हैं, बल्कि अपनी झोपड़ियों का निर्माण अकेले करते हैं एवं जंगल में रहते हैं।

आदिम जनजातियों की दशा

आदिम जनजातियों के बारे में अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इनके समाज में कई प्रकार की समस्याएं व्याप्त हैं। इनका समाज सुविधाविहिन है। इनके समक्ष स्वयं को बचाए रखने की चुनौती है। कई आदिम जनजातियां विलुप्त होने के कगार पर हैं। कि इनके पास न रहने का पक्का मकान है और न ही पर्याप्त कृषि योग्य भूमि है। अधिकांश आदिम जनजातियां जंगली फल–फूल एवं जंगली जानवरों पर निर्भर हैं। जो जनजातियां खेती करती हैं, उनके पास साधनों का अभाव है। कृषि योग्य जमीन बहुत ही कम है। इनके पहाड़ों पर रहने के कारण कृषि वर्षा पर निर्भर होती है। खेती करने वाली जनजातियां इतना भी नहीं उपजा पाती हैं

जिसमें से उनका भरण पोषण हो सके। वनों की अवैध कटाई ने भोजन की उपलब्धता को कम कर दिया हैं जिससे ये अन्य राज्यों में भोजन एवं मजदूरी की तलाश में पलायन कर रहे हैं। आदिम जनजातीय समाज में शिक्षा का स्तर निम्न है। जनजातीय समाज साहूकारों के शोषण का शिकार है। इनकी आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय है कि ये धर्म परिवर्त्तन कर ईसाई बन रहे हैं। स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित एवं भोजन के अभाव में ये कुपोषण का शिकार हो रहे हैं। जनजातियों के समक्ष विस्थापन की भी समस्या है। झारखंड में बहुत–सी औद्योगिक इकाइयां जैसे दामोदर घाटी निगम, बोकारो इस्पात संयंत्र, सिंदरी उर्वरक कारखाना आदि स्थापित किए गए। इन्हें स्थापित करने के लिए बड़े पैमाने पर जमीन अधिग्रहित की गई इन स्थानों पर जो लोग रहते थे, उनके पुनर्वास के लिए उचित कदम नहीं उठाए गए जिससे ये झारखंड के पड़ोसी राज्यों में रोजी–रोटी की तलाश में पलायन कर गए। लगभग सभी जनजातियां भोजन के लिए जंगली जानवरों का शिकार करती हैं। परंतु तस्करों द्वारा जंगली जानवरों का अवैध रूप से शिकार करने एवं जंगल की निरंतर अवैध कटाई होने के कारण जंगली जानवरों की संख्या घटती जा रही है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि आदिम जनजातियों की दशा अत्यंत दयनीय है। कई जनजातियों की संख्या निरंतर घट रही है। चूंकि झारखंड की पहचान यहां की वन एवं खनिज संपदा तथा जनजातीय संस्कृति से है इसीलिए इस ओर सार्थक पहल करने की आवश्यकता है।

आदिम जनजातीय समुदाय के पिछड़ेपन का कारण

आदिम जनजातीय समाज के अध्ययन से इनके सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन के लिए निम्न मुख्य कारण दृष्टिगोचर होते हैं:

- अधिकांश आदिम जनजाति घुमंतु जीवन व्यतीत करते हैं इससे इनसे संपर्क करना कठिन होता है।
- आदिम जनजाति का एक बड़ा हिस्सा भूमिहीन है।
- ये प्राचीन पद्धति से खेती करते हैं एवं साधनों का अभाव है।
- सिंचाई सुविधा एवं पेयजल का संकट है।
- आदिम जनजातियां पहाड़ों की चोटियों पर रहती हैं इसीलिए इन तक सुविधाएं नहीं पहुंच पाती हैं।
- आदिम जनजातियां भूत–प्रेत, जादू–टोना में विश्वास करती हैं और ये आज भी रुढिवादी अंधविश्वास से घिरे हुए हैं।
- सभी आदिम जनजातियां ऋण के बोझ से दबी हैं एवं साहूकारों के शोषण का शिकार हैं।
- इनके गांवों तक जाने के लिए आज तक सड़कें नहीं बनी हैं।
- अधिकांश जनजातीय गांव उग्रवाद से प्रभावित हैं जो विकास न होने का एक प्रमुख कारण है।
- वनों की निरंतर अवैध कटाई एवं जंगली जानवरों का अवैध शिकार जारी है।
- ये एकांत जीवन व्यतीत करना तथा जंगलों एवं पहाड़ों में रहना पसंद करते हैं जिससे ये लोग समाज के अन्य वर्गों से अलग–थलग हैं।
- सरकारी विकास कार्यक्रम से ये पूर्णतः अनभिज्ञ हैं।
- सरकार द्वारा इनके विकास के लिए ईमानदारीपूर्वक प्रयासों का अभाव है।

व्यावहारिक सुझाव

इनके सामाजिक–आर्थिक विकास में निम्नलिखित सुझाव सहायक सिद्ध हो सकते हैं :

- आदिम जनजातियों के गांवों तक पहुंचने के लिए सपंर्क मार्ग का निर्माण करना चाहिए।
- सभी विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन नियोजित तरीके से किया जाना चाहिए एवं नियोजन में युवकों को पूर्ण भागीदार बनाना चाहिए जिससे ये विकास कार्यक्रमों से लाभान्वित हो सकें।
- कार्यक्रम के क्रियान्वयन में सम्मिलित व्यक्तियों एवं संस्थाओं की जिम्मेदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए एवं कार्यक्रम में शामिल व्यक्तियों एवं संस्था को जनजातीय भाषा की जानकारी होनी चाहिए। यदि नहीं है तो इसकी जानकारी दी जानी चाहिए ताकि उनसे संवाद स्थापित किया जा सके।
- सरकार को सिंचाई सुविधा के साथ सभी कृषि सुविधाएं उपलब्ध करानी चाहिएं।
- आदिम जनजातियों को धीरे–धीरे प्राचीन पद्धति से खेती करने के बजाए आधुनिक तरीके अपनाने हेतु प्रेरित करना चाहिए।
- आदिम जनजातियों को उनके स्वभाव के अनुसार उनकी आर्थिक स्थिति ठीक करने हेतु छोटे–छोटे व्यवसायों से जुड़ने के लिए सकारात्मक पहल करनी चाहिए जैसे जंगली जड़ी बूटी, पत्तल, मधुमक्खी पालन, बांस से निर्मित वस्तुएं, सुअर, मुर्गी एवं बकरी पालन आदि।
- इन्हें छोटे–छोटे ऋण की सुविधा प्रदान की जाए एवं साहूकारों के बजाए सरकारी एजेंसियों से ऋण लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

- भूमिहीन आदिम जनजातीय परिवारों को उनके गांवों के नजदीक सरकार को भूमि आवंटन करना चाहिए जिससे वे समाज की मुख्यधारा में शामिल हो सकें।
- बंजर भूमि पर वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करना चाहिए।
- इन्हें अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए धीरे–धीरे प्रोत्साहित करना चाहिए।
- सरकार को वनों की अवैध कटाई एवं जानवरों के अवैध शिकार को रोकने के लिए कड़े कदम उठाने चाहिए।
- गैर–सरकारी संस्थाओं को इनके विकास में योगदान देने के लिए सहायता प्रदान करनी चाहिए एवं प्रोत्साहित करना चाहिए।
- वन विभाग के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को इनके साथ अपने संबंधों को और सुधारने के लिए प्रयास करने चाहिए जिससे वे लोग अपनापन महसूस कर सकें।
- सरकार को इनके गांवों को उग्रवाद मुक्त करने के लिए प्रयास करने चाहिए।
- इनके लिए चलाए जा रहे कार्यक्रमों एवं नीतियों की उपयोगिता का मूल्यांकन किया जाना चाहिए एवं आवश्यकतानुसार समय – समय पर नीतियों में संशोधन करना चाहिए।

निष्कर्ष

झारखंड की पहचान यहां की जनजातियों से है इसीलिए सरकार इन्हें नजरअंदाज नहीं कर सकती है। झारखंड का गठन हुए आठ वर्ष हो गए हैं। इसके बावजूद जनजातियों की स्थिति में संतोषजनक सुधार नहीं हुआ है। कागजी आंकड़ों एवं वास्तविकता में भिन्नता है। अब समय आ गया है कि सरकार द्वारा जनजातियों एवं आदिम जनजातियों के सामाजिक– आर्थिक विकास के लिए ठोस कदम उठाए जाएं। टालमटोल एवं नीतियों की सिर्फ घोषणा करने के बजाए सरकार को इस ओर दृढ़निश्चय, आत्मविश्वास एवं दिल से ईमानदारी के साथ कदम उठाना चाहिए। यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन नियोजित ढंग से एवं पूर्ण रूप से हो। समय रहते इस ओर प्रयास किया गया तो कई आदिम जनजातियों को विलुप्त होने से बचाया जा सकता है।

(लेखक विनोबा भावे विश्वविद्यालय हजारीबाग के वाणिज्य एवं प्रबंध विभाग में प्रोफेसर हैं।)

ई–मेल : kkmchoudhary@smartvaluebiz)

रोजगार गारंटी योजना जलस्तर बढ़ाने में सहायक बनी

गांवों में स्थायी परिसम्पत्ति का निर्माण कर किसानों की कृषि की उत्पादन क्षमता बढ़ाने की केन्द्र सरकार की पहल को सार्थक करने के उद्देश्य से चित्तौड़गढ़ जिले की राशमी पंचायत समिति की हिण्डोली ग्राम पंचायत के गणेशपुरा में एनीकट का निर्माण किया गया है। कार्यक्रम अधिकारी लोकश कुमार गौतम ने बताया कि 75 फीट लम्बाई एवं छः फीट ऊंचाई वाले इस एनिकट से गणेशपुरा, डिण्डोली एवं हरनाथपुरा के किसानों को लाभ मिलेगा। इस एनिकट के बन जाने से गांव में पानी की समस्या से निजात तो मिलेगी ही, साथ ही गांव के कुओं का जलस्तर ऊंचा उठने से कृषि की उत्पादन क्षमता में बढ़ोतरी होगी। कृषि की उत्पादन क्षमता बढ़ने से गांव के काश्तकारों की माली हालत में सुधार होगा। इसके अलावा गांव के पशुओं को हरा चारा आसानी से उपलब्ध होगा।

गांव की आर्थिक स्थिति कमजोर होने से 300 की आबादी वाले इस गांव में नाममात्र के तीन सरकारी कर्मचारी हैं जो राजस्थान पुलिस एवं राजस्थान पथ परिवहन निगम में कंडक्टर के पद पर कार्यरत हैं। जाट, सुथार एवं भील समुदाय के लोग काश्तकार पर ही निर्भर हैं।

घटती जमीन, बढ़ती जनसंख्या, बेरोजगारी व अशिक्षा को दूर करने में गांव के लोगों के लिए यह एनिकट सार्थक सिद्ध हो रहा है। महिलाओं की परेशानी को ध्यान में रखते हुए डिण्डोली की सरपंच प्रेम देवी जाट ने अपने प्रयासों से 1 नवम्बर, 2007 को इस एनिकट का निर्माण कार्य शुरू किया जो 15 फरवरी, 2008 को पूर्ण हो गया। इस एनिकट को मूर्त रूप देने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम के अंतर्गत बनवाया गया है। एक हजार 775 मानव दिवस सृजित कर लोगों को रोजगार मुहैया करवाया गया।

पानी की आवक एवं वर्षा के दिनों में बहने वाले नाले पर निर्मित इस एनिकट में 15 हजार क्यूबिक पानी भरने की क्षमता से गणेशपुरा के कुओं का जलस्तर ऊंचा तो उठेगा ही, साथ ही वहां के लोगों के जीवन–स्तर में इजाफा होगा। (पसूका)

जनजातियों का विकास और सरकारी प्रयास

डॉ. नीरज कुमार गौतम

जनजातियां वह समूह है जो सभ्यता काल के जीवन प्रतिमानों से संबंधित हैं। जनजाति के सदस्य अशिक्षित और तथाकथित सभ्यता से दूर हैं। वह प्राचीन, आर्थिक और सामाजिक जीवन के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। विविध जंगलों, पर्वतों, पठारों आदि निर्जन क्षेत्रों में निवास करने के कारण और विशिष्ट सामाजिक संगठन और सांस्कृतिक जीवन के विकास के कारण जनजातीय समाज में अन्य समाजों की तुलना में अनेक विभिन्नताएं पाई जाती हैं। भारत की कुल जनसंख्या (वर्ष 2001 के अनुसार) अनुसूचित जनजाति के लोग करीब 8 करोड़ 44 लाख हैं जिसमें से 4 करोड़ 27 लाख पुरुष एवं 4 करोड़ 7 लाख महिलाएं हैं। यह जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत है। यह जनजाति व्यक्तियों का वह समूह है जो निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता है तथा आदि पूर्व से अपना उद्गम मानता है जिसकी एक सामान्य संस्कृति है जो आज भी आधुनिक सभ्यता के प्रभावों से सापेक्षिक रूप से वंचित है।

प्रतिभावान आदिवासी छात्र/छात्राओं का आवासीय मॉडल स्कूल

वे प्रायः सभ्य जगत से दूर दुर्गम स्थानों में निवास करते हैं, उनकी अपनी एक जनजातीय भाषा होती है , उनका नीग्रिटो, अस्ट्रेलायड अथवा मंगोलायड में से किसी एक प्रजाति समूह से सम्बन्ध होता है, उनके समूहों के नाम, पारस्परिक व्यवहार के नियम होते हैं, उनका आदिम वर्ग होता है जिसमें भूतों तथा आत्माओं की पूजा का महत्वपूर्ण स्थान होता है तथा उनका सामान्य सांस्कृतिक एवं सुरक्षात्मक संगठन होता है। वे मदिरा एवं नृत्य के प्रति विशेष अभिरुचि रखते हैं, इनका स्वतंत्र संगठन होता है और वे जनजातीय व्यवसाय को अपनाते हैं। जैसे उपयोगी प्राकृतिक वस्तुओं का संग्रहण, शिकार, वन में उत्पन्न वस्तुओं का संग्रहण करना आदि सम्मिलित हैं। जनजातीय समाज की एक मूल विशेषता उनका धर्म एवं जादू टोना है जो उनकों उनकी जड़ों से जोड़े रखने का आधार है। धर्म और जादू – टोना मनुष्य की मात्र शरीरेत्तर आवश्यकताओं की ही पूर्ति नहीं करता बल्कि ये सामंजस्य स्थापन का एक उपयोगी साधन भी होता है। जब तक इन्हें प्रतिस्थापित नहीं किया जाता तब तक इनका उन्मूलन विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। जहां आदिम जादू–टोना स्थानीय बीमारियों एवं उनके उपचार के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा रहता है वहीं धर्म सामाजिक मानकों एवं व्यवस्थापन से। यह निश्चित है कि एक रूढ़ जीववाद एक आदिम जनजाति के जीवन में जितना कुछ करता है उतना कोई और धर्म नहीं कर सकता है क्योंकि जीववाद स्थानीय समस्याओं को दूर करने के स्थानीय प्रयास का प्रतिनिधित्व करता है। वे जनजातियां जो आधुनिक समाज के संपर्क में नहीं आई हैं वे स्वयं ही आर्थिक समस्याओं को पैदा कर रही हैं। इसके परिणाम अत्यंत घातक होते हैं। स्थानांतरित कृषि के परिणामस्वरूप जनजातियों के समक्ष भुखमरी की स्थिति पैदा होती है या फिर उन्हें अपनी परंपरागत आर्थिक क्रियाओं का परित्याग करना पड़ता है। आर्थिक–सामाजिक समस्याओं के लक्षण बड़े स्पष्ट होते हैं और प्रभाव बहुत गंभीर। यदि इन लक्षणों को ध्यान में रखकर समस्याओं के निवारण हेतु कदम न उठाए जाएं तो जनजातीय पुनर्वास की कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती।

राज्यों में अनुसूचित जनजातियों के उत्थान हेतु आदिवासी विकास विभाग के माध्यम से विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है, जिनमें शिक्षा विषयक योजनाएं प्रमुख हैं। विभाग द्वारा शालेय शिक्षा के अर्न्तगत आदिवासी विकास खण्डों में प्राथमिक से लेकर उच्चतर माध्यमिक स्तर तक की शालाओं का संचालन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त मैट्रिक/पोस्ट मैट्रिक छात्रावास/आश्रम शालाएं एवं उत्कृष्ट शिक्षा केन्द्रों की स्थापना, छात्रगृह, विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियों का वितरण, प्रशिक्षण सह–उत्पादन केन्द्र, राहत एवं सामूहिक विवाह

योजना तथा स्वरोजगार हेतु आदिवासी वित्त एवं विकास निगम के माध्यम से आर्थिक विकास की विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है।

जनजातियों के उत्थान हेतु संवैधानिक प्रावधान

- लोकसभा तथा राज्यों की विधानसभाओं में जनजातियों के प्रतिनिधियों के लिए जनसंख्या के आधार पर दस वर्ष के लिए सीटें सुरक्षित कर दी गई हैं। यह प्रावधान संविधान के सोलहवें भाग के अनुच्छेद 330 तथा 332 के अनुसार है।
- संविधान के पन्द्रहवें भाग में अनुच्छेद 325 के अनुसार किसी को भी धर्म, जाति, प्रजाति एवं लिंग के आधार पर मताधिकार से वंचित नहीं किया जा सकेगा।
- संविधान के बारहवें भाग के अनुच्छेद 275 के अनुसार केन्द्र सरकार राज्यों को जनजातीय कल्याण एवं उनके उचित प्रशासन के लिए विशेष धनराशि देगी।
- संविधान के अनुच्छेद 16 (4) तथा 335 के अनुसार सार्वजनिक सेवाओं और सरकारी नौकरियों में जनजातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखने का अधिकार राज्य को दिया गया है।
- अनुच्छेद 244 एवं 324 में राज्यपालों को जनजातियों के संदर्भ में विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं।
- संविधान के कुछ अनुच्छेद जैसे 244 (2) व संविधान भाग 6, अनुच्छेद 164 के अनुसार असम की जनजातियों के लिए प्रादेशिक परिषद व बिहार, मध्य प्रदेश और उड़ीसा में जनजातीय कल्याण मंत्रालय स्थापित करने का विधान है।
- संविधान के भाग 4 के अनुच्छेद 46 में जनजातियों की शिक्षा की उन्नति के लिए तथा आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए विशेष ध्यान देना राज्य का कर्तव्य माना गया है।

मध्य प्रदेश के आदिवासी वित्त एवं विकास निगम

मध्य प्रदेश आदिवासी वित्त एवं विकास निगम की स्थापना इंडियन कंपनी एक्ट 1956 की धारा 25 के अन्तर्गत की गई है जिसका उद्देश्य प्रदेश के आदिवासियों का आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक विकास, आदिवासियों का स्वास्थ्य संबंधी विकास व उनमें साफ–सफाई के प्रति जागरुकता लाना, आदिवासियों को अशिक्षा, शोषण, अत्याचार, बेरोजगारी, गरीबी, प्रदूषण, अंधविश्वास, ऋणग्रस्तता, श्रम के शोषण से सुरक्षा, आदिवासी भाषा, कला, संस्कृति, रीति–रिवाज व परम्पराओं का संरक्षण व संवर्धन, आपदाग्रस्त आदिवासियों का पुनर्वास, बंधुआ आदिवासी श्रमिकों की मुक्ति व पुनर्वास, शोषण समाप्त कर उन्हें विकसित कर गरीबी रेखा से ऊपर उठाना, गृह निर्माण हेतु आदिवासियों को ऋण उपलब्ध कराना, उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सुविधाजनक ऋण उपलब्ध कराना। मध्य प्रदेश आदिवासी वित्त एवं विकास निगम द्वारा प्रदेश के आदिवासीजनों के कल्याणार्थ रोजगार निर्माण हेतु निम्न तीन स्वरोजगार योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है–

राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम द्वारा संचालित योजनाएं –

- **कृषि एवं समवर्गी क्षेत्र से संबंधित योजनाएं –** ट्रेक्टर–ट्राली योजना, बकरी पालन योजना, मुर्गी पालन योजना, सूअर पालन योजना, डेयरी फार्मिंग योजना, कृषि उत्पादकता बढ़ाओ योजना, लघुवनोपज क्रय–विक्रय योजना, नर्सरी एवं वर्मा कल्चर योजना।
- **यातायात क्षेत्र से संबंधित योजनाएं –** मिनी ट्रक योजना, जीप टैक्सी योजना, डम्पर योजना, मिनी बंस योजना, ऑटो रिक्शा योजना, ट्रक योजना, बस योजना, साइकिल रिक्शा योजना, ट्रेवल एजेन्सी।
- **सेवा क्षेत्र से संबंधित योजनाएं –** फोटो कॉपियर योजना, जनरल स्टोर योजना, मिनी राईस मिल योजना, आटा–चक्की योजना, एस.टी.डी./पी.सी.ओ. योजना, टेंट हाउस योजना, इन्टरनेट ढाबा योजना, मेडिकल स्टोर योजना, पान दुकान योजना।
- **उद्योग क्षेत्र से संबंधित योजनाएं –** ईंट निर्माण योजना, झाड़ू निर्माण योजना, प्रिंटिग प्रेस योजना, ढाबा योजना, कालीन बुनाई योजना, बांस टोकरी योजना।

नाबार्ड योजना – नाबार्ड योजना के अन्तर्गत बैंकों के माध्यम से ऋण स्वीकृत कराकर निगम द्वारा अनुदान दिया जाता है। यह योजना स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के पैटर्न पर संचालित हैं। सिंचाई योजना को छोड़कर इस योजना में अनुदान राशि योजना लागत का 50 प्रतिशत या अधिकतम 10,000 रुपये है। सिंचाई योजनाओं में योजना लागत का 50 प्रतिशत अनुदान किया जाता है, इसमें कोई वित्तीय सीमा नहीं है।

राष्ट्रीय विकलांग वित्त एवं विकास निगम के माध्यम से संचालित योजनाएं– वर्ष 1998–99 में राष्ट्रीय विकलांग वित्त एवं विकास निगम/(फरीदाबाद–नई दिल्ली) द्वारा मध्य प्रदेश आदिवासी वित्त एवं विकास निगम को राज्य में निवासरत आदिवासी वर्ग के विकलांग जनों के आर्थिक उत्थान हेतु चैनलाइजिंग एजेंसी बनाया गया है। निगम द्वारा विकलांग आदिवासी वर्ग के आर्थिक उत्थान के लिये योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है।

विशेष पिछड़ी जनजाति हेतु छात्रवृत्ति – विभाग की प्री–मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना में बालकों के लिए छात्रवृत्ति की सुविधा कक्षा 6

से प्रारंभ होती है किन्तु विशेष पिछड़ी जनजाति (बैगा, सहरिया एवं भारिया) में शिक्षा के स्तर को देखते हुए कक्षा पहली से 5वीं तक के बालकों के लिए भी छात्रवृत्ति योजना लागू की गई है, यह योजना 2005–06 से प्रारंभ की गई है।

उत्कृष्ट विद्यालय – विभाग के 19 जिलों के 76 विकासखंडों में वर्ष 2005 से विकासखंड स्तरीय उत्कृष्ट विद्यालय प्रारंभ किये गये हैं। इन विद्यालयों में प्रवीणता के आधार पर सभी विद्यार्थियों को प्रवेश दिया गया है। विद्यालयों में सुसज्जित प्रयोगशालाएं, समृद्ध पुस्तकालय, आवश्यक खेल सामग्री सहित अनुभवी एवं सुयोग्य प्राचार्य का मार्गदर्शन तथा पारंगत विद्वान शिक्षकों द्वारा अध्यापन की व्यवस्था की गई है। इन विद्यालयों में आवश्यक सुविधाओं की पूर्ति हेतु 10 लाख रुपये प्रति संस्थान के मान से राशि का प्रावधान किया गया है।

विद्यालयों एवं छात्रावासों को पुरस्कार – विभागीय विद्यालयों तथा छात्रावास/आश्रमों के प्रबंधन एवं शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने तथा विभागीय संस्थाओं के बीच स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की भावना जागृत करने की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ विद्यालय छात्रावास एवं आश्रमों का चयन कर उन्हें पुरस्कृत करने की योजना वर्ष 2005–06 से प्रारंभ की गई है। पुरस्कार स्वरूप जिला स्तर पर प्रथम पुरस्कार 25000 रुपये, द्वितीय पुरस्कार 15000 रुपये, एवं तृतीय पुरस्कार 10000 रुपये, का रखा गया है।

राज्य स्तर पर भी सर्वश्रेष्ठ विद्यालय छात्रावास एवं आश्रम को पुरस्कृत किया जाएगा प्रथम पुरस्कार 51000 रुपये, द्वितीय पुरस्कार 31000 रुपये, एवं तृतीय पुरस्कार 21000 रुपये, का रखा गया है।

विशेष पिछड़ी जनजाति के बालकों को निःशुल्क गणवेश प्रदाय – सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत राज्य शिक्षा केन्द्र के माध्यम से बालिकाओं को निःशुल्क गणवेश प्रदाय किये जाते हैं, किन्तु विभाग ने विशेष पिछड़ी जनजाति (बैगा, सहरिया एवं भारिया) के कक्षा 1 से 8 तक अध्ययनरत् बालकों के लिए भी निःशुल्क गणवेश योजना प्रारंभ की है।

जनजातियों के परम्परागत कौशल को बढ़ावा देना चाहिए

स्वर्ण जयंती मध्य प्रदेश अनुसूचित जनजाति बस्ती विकास योजना – विकास की अधोसंरचना की दृष्टि से पिछड़े रह गए आदिवासी बाहुल अंचलों के विकास हेतु "स्वर्ण जयंती मध्य प्रदेश अनुसूचित जनजाति बस्ती विकास योजना" क्रियान्वित की जा रही है। इस योजना के अंतर्गत आदिवासी बाहुल्य ग्रामों में सीमेंट, कंक्रीट रोड, नाली, खरन्जा, शौचालय संस्थाओं के बाउण्ड्री वॉल, सामुदायिक भवनों आदि का निर्माण कराया जायेगा।

उत्कृष्टता शिक्षा संस्थान – जिला स्तर पर पूर्व में खोले गये 50 सीट के एक बालक एवं एक बालिका उत्कृष्ट छात्रावास के समान, विकासखंड मुख्यालयों पर भी उत्कृष्टता शिक्षा केन्द्र प्रारंभ किये गये हैं, जिनमें निवास करने वाले छात्र–छात्राओं को समस्त आवश्यक सुविधाएं तथा विशेष प्रशिक्षण का प्रावधान रखा गया है।

विदेश अध्ययन छात्रवृत्ति योजना में आय सीमा एवं हितग्राही संख्या में वृद्धि – इस योजना के अन्तर्गत यदि कोई आदिवासी विद्यार्थी विदेश में जाकर उच्च अध्ययन प्राप्त करना चाहता है तो उस पर आने वाले संपूर्ण व्यय का भार विभाग वहन करता है।

नवीन पदों की स्वीकृतियां – वर्ष 1999 से 2002 के बीच खोले गये हायर सेकेण्डरी स्कूल/हाईस्कूल/माध्यमिक विद्यालयों में प्राचार्य तथा शिक्षकों के पद स्वीकृत हुए थे, जिसमें विद्यालय संचालन में कठिनाई थी।

छात्रावासों में पुस्तकालय व्यवस्था – छात्रावासों में निवास करने वाले विद्यार्थियों को श्रेष्ठ स्तर की पुस्तकें सदैव उपलब्ध रहें इस हेतु इस वर्ष 232 प्री–मैट्रिक छात्रावासों में तथा 26 पोस्ट–मैट्रिक छात्रावासों में

पुस्तकालय प्रारंभ किये गये हैं। प्रत्येक छात्र को पुस्तकालय हेतु दस हजार रुपये की राशि उपलब्ध कराई गई है।

छात्रावास/आश्रमों की सुदृढ़ीकरण – छात्रावास एवं आश्रमों में समस्त सामग्रियां उपलब्ध रहें, भवन साफ–सुथरा रहे तथा विद्युत, पेयजल एवं शौचालय की समुचित व्यवस्था उपलब्ध हो इस हेतु छात्रावास और आश्रमों का सुदृढ़ीकरण किया गया है।

छः एकलव्य आवासी विद्यालय – अनुच्छेद 275 (1) के अन्तर्गत 06 आवासीय विद्यालयों के भवन, प्रति भवन लागत 250.00 लाख के मान से स्वीकृत की।

विज्ञान कक्षों (प्रयोगशाला) का निर्माण – वर्ष 2005–2006 में 20 उ.मा.वि. भवनों में विज्ञान कक्ष निर्माण की स्वीकृति प्रति भवन 5 लाख के मान से एक करोड़ रुपये दस लाख की स्वीकृति प्रदान की गई है।

जनजातीय महिलाओं के लिए योजना

शैक्षणिक योजनाएं

शालाएं – विभाग द्वारा 55 हाईस्कूल, 102 उच्चतर माध्यमिक शालाएं कन्याओं के लिए संचालित हैं। इसके अतिरिक्त छिन्दवाड़ा, पुष्पराजगढ़ (शहडोल), कुक्षी (धार) में कन्या शिक्षा परिसर भी संचालित हैं। शिक्षा के साथ–साथ जनजाति बालिकाओं की खेल प्रतिभा के उन्नयन हेतु 3 कन्या क्रीड़ा परिसर निवाली (बड़वानी), शाहपुरा (डिण्डोरी) एवं अमरकंटक (अनूपपुर) में संचालित किये जा रहे हैं।

छात्रावास/आश्रम – दूरस्थ अंचलों से अध्ययन हेतु आने वाली कन्याओं के लिये आवासीय सुविधा उपलब्ध कराने हेतु 232 प्री–मैट्रिक/पोस्ट मैट्रिक छात्रावास एवं 346 कन्या आश्रम संचालित किए जा रहे हैं। इन संस्थाओं में प्रवेश लेने वाली प्रत्येक बालिका को 360 रुपये प्रतिमाह की दर से शिष्यवृत्ति दी जाती है।

उत्कृष्ट शिक्षा केन्द्र – निदानात्मक शिक्षा प्रदान करने हेतु 19 आदिवासी जिलों के मुख्यालय पर बालिकाओं के लिये 50 सीट वाले उत्कृष्ट शिक्षा केन्द्र स्थापित किये गये हैं। वर्ष 2004–05 में 30 आदिवासी विकासखंडों में एक–एक कन्या छात्रावास को उत्कृष्ट शिक्षा केन्द्र में परिवर्तित किया गया है।

राज्य छात्रवृत्ति – योजनान्तर्गत कक्षा 1 से 5 तक की बालिकाओं को 150 रुपये, कक्षा 6 से 8 तक 300 रुपये, कक्षा 9 से 10 तक 400 रुपये दस माह हेतु छात्रवृत्ति दी जाती है।

छात्रावासों में अतिरिक्त छात्रवृत्ति – कक्षा 11वीं एवं 12वीं में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति के पोस्ट–मैट्रिक छात्रावासों में निवासरत कन्याओं को वर्ष 2004–05 में छात्रवृत्ति की दर में 15 रुपये प्रतिमाह की वृद्धि उपरांत 125 रुपये प्रतिमाह अतिरिक्त छात्रवृत्ति राज्य शासन के स्रोत से दी जा रही है।

पोस्ट–मैट्रिक छात्रवृत्ति – केन्द्र प्रायोजित पोस्ट–मैट्रिक छात्रवृत्ति योजनान्तर्गत निर्धारित दरों पर एक लाख रुपये की आय सीमा तक कन्याओं को भी पोस्ट–मैट्रिक छात्रवृत्ति भारत सरकार के नियमों के अनुरूप दी जाती है तथा एक लाख रुपए से 1.80 लाख रुपये तक राज्य शासन के स्रोत से पोस्ट–मैट्रिक छात्रवृत्ति के अंतर्गत केवल शुल्क देने का प्रावधान है।

कन्या साक्षरता प्रोत्साहन – अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं को शिक्षा हेतु प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से कक्षा पांचवीं, आठवीं एवं दसवीं बोर्ड परीक्षा पास कर अगली कक्षा में नियमित रूप से प्रवेश लेने वाली छात्रा को क्रमशः 500, 1000 एवं 2000 रुपये की प्रोत्साहन राशि दी जाती है।

निःशुल्क गणवेश – सर्वशिक्षा अभियान के अन्तर्गत 45 विकासखंडों की कक्षा 1 से 8वीं तक की अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं को निःशुल्क गणवेश का प्रदाय किया जा रहा है।

निःशुल्क साइकिल प्रदाय योजना – शासन द्वारा वर्ष 2004–05 में कक्षा 9वीं की उन अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं को साइकिल प्रदाय की जाएगी जो अन्य ग्राम की शालाओं में अध्ययन करने जाती हैं।

राहत योजना – राहत योजना नियम 1979 के अंतर्गत साधनहीन कन्या जिसके माता–पिता न हों, के विवाह हेतु 2000 रुपये की आर्थिक सहायता दी जाती है तथा ऐसी कन्या जिसके माता–पिता की मासिक आय 200 रुपये प्रतिमाह तक है, को 1000 रुपये की आर्थिक सहायता दी जाती है।

सामूहिक विवाह योजना – इस योजना के अन्तर्गत आदिवासी सामूहिक विवाह सम्मेलन में विवाह करने वाली कन्या के परिवार को इस योजना के अन्तर्गत आर्थिक सहायता दी जाती है।

सिविल सेवा प्रोत्साहन योजना – राज्य शासन ने संघ लोक सेवा आयोग तथा मध्य प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाने वाली सिविल सेवा परीक्षाओं में विभिन्न स्तरों पर सफल होने वाली अनुसूचित जनजाति कन्याओं को भी प्रोत्साहन राशि देने का प्रावधान किया है।

मध्य प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित सिविल सेवा परीक्षा में विभिन्न स्तर पर अनुसूचित जनजाति के सफल प्रतियोगियों को जिनके माता–पिता/अभिभावकों की वार्षिक आय रुपये 1.20

लाख रुपये से अधिक न हो को – (1) प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण करने पर 20000 रुपये (2) मुख्य परीक्षा उत्तीर्ण करने पर 30,000 रुपये (3) चयन होने पर 25000 रुपये की प्रोत्साहन राशि प्राप्त करने की पात्रता होगी।

आदिवासी समाज की नृत्य में विशेष अभिरुचि होती है

स्वतंत्रता के बाद जनजाति समुदाय के विकास के लिए सरकार ने एक तरफ संविधान के माध्यम से इन्हें संरक्षण प्रदान किया है वहीं इस वर्ग के छात्र–छात्राओं के शैक्षणिक विकास, शासकीय नौकरी में आरक्षण, रोजगार प्रारंभ करने के लिए विभिन्न शासकीय योजनाओं के माध्यम से धन उपलब्ध कराने एवं प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है। अशिक्षा, शासकीय योजनाओं का पूरा ज्ञान न होना तथा प्रशिक्षण और आधुनिक संचार साधनों से जुड़े न होने के कारण यह समुदाय अभी भी पिछड़ा हुआ है। अतः वैश्वीकरण के इस युग में इस समुदाय को जोड़ना आवश्यक है जिसके लिये शिक्षा नेतृत्व, सरकारी योजनाओं, प्रशिक्षण, तकनीकी ज्ञान और स्थानीय अप्रोच नितान्त आवश्यक है।

शासन द्वारा विभिन्न रूपों में जनजातियों की समस्याओं को हल करने एवं उन्हें बाहरी लोगों के शोषण से बचाने के लिए संविधान की पांचवीं एवं छठी अनुसूची में विविध प्रावधान किये गए हैं। इसके बावजूद अपेक्षित रूप से उन्हें इनका लाभ नहीं मिल पा रहा है। अतः जनजातियों में मौजूदा गरीबी एवं अन्य आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए निम्नांकित सुझाव दिये हैं :–

- जनजातियों के प्रत्येक परिवार को कृषि के लिए इतनी भूमि दी जानी चाहिए जो खाद्यान्न के मामलों में उसे आत्मनिर्भर बना दे।
- जनजाति के लोगों को कृषि के आधुनिक उन्नत तरीकों की जानकारी ही नहीं वरन् प्रशिक्षण भी दिया जाये, कृषि सम्बन्धी उनके अन्धविश्वासों को दूर करने का प्रयत्न किया जाये।
- 'झूम' या स्थानान्तरित कृषि पद्धति पर पूर्ण रोक लगा दी जाये। जब तक यह पद्धति समाप्त नहीं होगी, जनजातीय कृषकों की आर्थिक दशा ठीक नहीं हो सकती है। इसके रहते राष्ट्रीय कृषि उत्पादन के लक्ष्यों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता रहेगा।
- सरकार को चाहिए कि वह कृषि कार्य में लगे हुए जनजाति के लोगों को उन्नत बीज, उपयुक्त खाद तथा आधुनिकतम उपकरण उपलब्ध कराएं एवं बैलों की खरीद के लिए उन्हें ऋण देने की व्यवस्था करें।
- वन सम्पत्ति के दोहन के लिए आदिवासी सहकारी समितियों की स्थापना की जाए और इन सम्पत्ति को एकत्र करने के ठेके ठेकेदारों और व्यापारियों को न दिए जाकर इन सहकारी समितियों को मिलें, ताकि उसके लाभ में ये लोग भागीदार बन सकें और उनका आर्थिक शोषण न हो।
- जनजातियों को उनके पुश्तैनी उद्योग–धंधों को बढ़ाने में मदद की जाएं और नए उद्योगों का उचित प्रशिक्षण दिया जाये। घरेलू उद्योगों की स्थापना के लिए आर्थिक सहायता भी दी जानी चाहिए।
- आदिवासियों में सहकारी संस्थाएं अधिकाधिक संख्या में खोली जाएं, ताकि वैयक्तिक ऋणदात्री संस्थाएं उनका शोषण न कर सकें।
- औद्योगिक श्रमिक के लिए अच्छे मकान और काम करने की अवस्थाएं, काम के उचित घण्टे आदि के प्रति भी ध्यान देना आवश्यक है।
- आदिवासियों की लड़कियों के लिए बालिका विद्यालय खोले जाएं। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद उनको व्यावसायिक प्रशिक्षण मिले जिससे वे अध्यापिकाओं या नर्सों के रूप में सरकारी और गैर–सरकारी संस्थाओं में काम कर सकें।

आज आवश्यकता इस बात की है कि जनजातीय लोगों की वास्तविक समस्याओं को उनके करीब जाकर देखा जाए, फिर उनके निराकरण के उपाय किए जाएं तथा उन्हें पूरी ईमानदारी से लागू किया जाए तो सकारात्मक परिणाम सामने आएंगे।

(लेखक अर्थशास्त्र शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय देवरी, जिला सागर (म.प्र.) में अर्थशास्त्र के प्रवक्ता हैं)

ई–मेल : neeraj_gautam76@yahoo.co.in

जनजाति कल्याणः नीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था

डॉ. एस.के. कटारिया

अपनी सांस्कृतिक विविधताओं के लिए विश्व प्रसिद्ध भारत के 15 प्रतिशत भू–भाग में आदिवासी अथवा जनजाति वर्ग के व्यक्ति निवास करते हैं। देश की कुल जनसंख्या के 8.08 प्रतिशत इन आदिवासियों को समाजशास्त्री जी.एस. घुरिये ने 'पिछड़े हिन्दू' नाम देते हुए नृशास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी माना है। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि आज के उन्नत मानव समाज में एक ऐसा भी मानव समुदाय है जो अभी तक आपसी संवाद हेतु अपनी कोई भाषा विकसित नहीं कर पाया है। जी हां, 'भारत के काला पानी' के नाम से चर्चित अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में निवास कर रही अण्डमानीज, जरावास, निकोबारीज, ओनगीज, सेण्टीनीलीज तथा सोम पीन्स आदिम जनजातियों के वर्ग इसी श्रेणी में आते हैं।

गणतंत्र दिवस पर जनजातियों का विकास दर्शाती जनजातीय कार्य मंत्रालय की झांकी

संवैधानिक प्रावधान

कल्याणकारी राज्य होने के नाते भारत के संविधान के अनेक अनुच्छेदों यथा 19,16,164,243,244,275,330,332,334,335, 338,339,340 तथा 342 में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु विशिष्ट प्रावधान किये गये हैं। इनमें कतिपय अनुच्छेद बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। अनुच्छेद 244 (1) के अन्तर्गत पांचवीं अनुसूची में ऐसे अनुसूचित क्षेत्रों का प्रावधान है जिन्हें राष्ट्रपति किसी राज्य के राज्यपाल से परामर्श कर घोषित करते हैं। अनुसूचित क्षेत्रों वाले राज्य के राज्यपाल को यह शक्ति प्राप्त होती हैं कि वह जनजातियों से भूमि के हस्तांतरण का निषेध या प्रतिबन्धित कर दे। साथ ही राज्यपाल इन क्षेत्रों के लोगों को धन उधार देने के कारोबार को भी विनियमित कर सकता है। ऐसे क्षेत्रों की राज्यपाल प्रतिवर्ष एक रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेजते हैं। ऐसे राज्यों में जनजातीय सलाहकार परिषद भी होती है। 20 सदस्यीय इस परिषद में तीन चौथाई सदस्य विधानसभा में अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधि होते हैं। यह परिषद जनजाति कल्याण एवं विकास हेतु परामर्श देती है।

अनुच्छेद 244 (4) के अन्तर्गत छठी अनुसूची में पूर्वोत्तर के क्षेत्रों को जनजातीय क्षेत्र घोषित किया गया है। ऐसे क्षेत्रों में चुने हुए जिलों में स्वायत्त परिषदों (अधिकतम 30 सदस्य) की व्यवस्था की गई है। इन परिषदों को विभिन्न विधायी, न्यायिक एवं कार्यकारी शक्तियां प्राप्त हैं। असम, मेघालय, मिजोरम तथा त्रिपुरा में स्वायत्त जिला परिषदें कार्यरत हैं।

राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग

भारत में अनुसूचित जनजातियों से संबंधित विभिन्न मुद्दों को तत्परता से निपटाने तथा उन पर विशेष ध्यान देने हेतु पृथक से मंत्रालय एवं तत्पश्चात् एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की गई है। इसी क्रम में 89वें संविधान संशोधन, 2003 के माध्यम से संविधान में एक नया अनुच्छेद 338 (क) जोड़ते हुए इस आयोग का वर्णन दिया गया है। इसी क्रम में 19 फरवरी, 2004 को इस आयोग का गठन हुआ।

इससे पूर्व यह आयोग राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग कहलाता था जिसकी स्थापना सन् 1978 में की गई थी तथा सन् 1990 में 65वें संविधान संशोधन के द्वारा इसे अधिक सशक्त बनाया गया था। राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय में से जनजातीय कार्यों को पृथक करके एक नया जनजातीय कार्य मंत्रालय बना देने से इस आयोग को दो आयोगों में विभक्त किया जाना अनिवार्य हो गया था। राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष तथा तीन सदस्य होते हैं जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा जारी वारंट के माध्यम से होती है। आयोग की अवधि तीन वर्ष निर्धारित की गई है। आयोग के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा सदस्यों की सेवा शर्तें एवं कार्यकाल राष्ट्रपति द्वारा निश्चित किए गए नियमानुसार होते

हैं। यह आयोग अनुसूचित जनजातियों से संबंधित समस्त प्रकार के कानूनों, नीतियों, रक्षोपायों एवं सामाजिक–आर्थिक विकास कार्यक्रमों के संबंध में सरकार को परामर्श प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह आयोग लघु वन उत्पाद, भू–स्वामित्व, जल संसाधन, पुनर्वास, सामाजिक वानिकी, पंचायती राज, बंटाई पर खेती तथा जनजातीय हितों की रक्षा के लिए समस्त प्रकार की शिकायतों का निवारण करता है। दिल्ली में मुख्यालय के अतिरिक्त इस आयोग के भोपाल, भुवनेश्वर, जयपुर, रायपुर, रांची और शिलांग में क्षेत्रीय कार्यालय भी हैं। इस आयोग को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अंतर्गत सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त हैं।

आयोग को नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, 1989 के संदर्भ में उन मुद्दों पर अधिकारिता प्राप्त है जिनका संबंध अनुसूचित जनजातियों से है।

जनजातीय कार्य मंत्रालय

देश में जनजातीय जनसंख्या की विविधता, विपुलता तथा समस्याओं को देखते हुए विशिष्ट प्रशासनिक प्रयासों की आवश्यकता एक लम्बे समय से अनुभव की जा रही थी। इसी क्रम में भारत सरकार ने निर्णय लिया कि जनजातीय या आदिवासी मामलों के लिए पृथक से मंत्री पद तथा मंत्रालय स्थापित कर दिया जाए ताकि अनुसूचित जनजातियों से संबंधित समाज कल्याण कार्यों में गति आ सके।

रोजगार गारंटी योजना पर काम करते हुए आदिवासी

वस्तुतः स्वतंत्रता के पश्चात् जनजातीय प्रकरणों का निस्तारण करने हेतु गृह मंत्रालय में आदिवासी प्रभाग बनाया गया था जिसे सन् 1985 में कल्याण मंत्रालय को स्थानान्तरित किया गया। कालान्तर में यह अनुभव किया गया कि आदिवासी क्षेत्रों की समस्याएं जटिल, भिन्न तथा विशिष्टताओं से युक्त हैं अतः एक पृथक मंत्रालय होना चाहिए।

आदिवासियों के विकास की ओर अधिक ध्यान देने के लिए सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय में से अक्टूबर, 1999 में एक अलग जनजातीय कार्य मंत्रालय बनाया गया। मंत्रालय को आवंटित विषयों में वित्तीय सहायता के माध्यम से अन्य केंद्रीय मंत्रालयों या राज्यों या संघ राज्य क्षेत्रों तथा स्वैच्छिक संगठनों के प्रयासों में मदद करने तथा संवर्द्धित करने एवं अनुसूचित जनजातियों की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सरकार एवं आदिवासी क्षेत्रों में व्याप्त दूरी को समाप्त करना शामिल है। अनुसूचित जनजातियों के विकास से संबंधित कार्यक्रमों की आयोजना, संवर्द्धन, समन्वय तथा क्रियान्वयन की देखरेख करने के लिए जनजातीय कार्य मंत्रालय सरकार की नोडल एजेंसी है।

इस मंत्रालय के द्वारा मुख्यतः जनजाति उपयोजना (टीएसपी), विशिष्ट संघटक योजना तथा ग्राम अन्न बैंक योजना और शैक्षिक तथा आर्थिक विकास के बहुत सारे विकास कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं। एक सहकारी परिसंघ के रूप में सन् 1987 में बना 'भारतीय आदिवासी सहकारी विपणन एवं विकास संघ लिमिटेड' आदिवासियों के लघु वनोत्पादों तथा अतिरिक्त कृषि उत्पादों के लिए लाभकारी कीमतें सुनिश्चित करने तथा निजी क्षेत्र के व्यापारियों द्वारा किए जाने वाले शोषण से रक्षा करता है। अप्रैल, 2001 में स्थापित 'राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम लिमिटेड' एक सरकारी कंपनी है जो पूर्ववर्ती 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति वित्त एवं विकास निगम लिमिटेड' के विभाजन से अस्तित्व में आया है। यह कंपनी अनुसूचित जनजाति के लोगों को स्वरोजगार एवं अन्य कार्यों हेतु ऋण उपलब्ध कराती है।

जनजातीय समुदायों पर राष्ट्रीय नीति, 2006

भारत में प्रथम बार बनी इस नीति का प्रारूप 21 जुलाई, 2006 को जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी किया गया। इस नीति के प्रारूप में कहा गया है कि देश में 698 जनजातियां (इनमें 75 आदिम जनजाति हैं) निवास करती हैं जिनकी जनसंख्या सन् 2001 के आंकड़ों के अनुसार 6.78 करोड़ (8.08 प्रतिशत) है।

संविधान के अनुच्छेद 342 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा प्रथम बार सन् 1950 में अनुसूचित जनजातियों की घोषणा की गई थी। उसके पश्चात् इन समुदायों हेतु अनेक कल्याणकारी एवं विकासपरक कार्यक्रम संघीय एवं प्रांतीय सरकारों द्वारा चलाए गए हैं। किन्तु अभी तक इन समुदायों हेतु कोई सुस्पष्ट राष्ट्रीय नीति नहीं बनाई गई थी। इस कमी की पूर्ति सन् 2006 में हुई।

- इन क्षेत्रों एवं समुदायों का समग्र विकास किया जाए जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक एवं प्रशासनिक प्रयास सम्मिलित हों।
- शिक्षा को प्राथमिकता देते हुए पोषण, रोजगार, छात्रावास, कौशल, स्वरोजगार तथा सहजता को ध्यान में रखा जाए।
- जनजातीय लोगों के परंपरागत ज्ञान एवं कौशल को संरक्षित एवं संवर्धित किया जाए।
- पेयजल, स्वच्छता, निर्धनता, जागरुकता, कुपोषण तथा अन्य रोगों के प्रसार को देखते हुए एलोपैथी पद्धति को सुदृढ़ किया जाए और साथ ही इनकी परंपरागत उपचार पद्धतियों का मानकीकरण कर उसे व्यवस्थित रूप दिया जाए।
- विस्थापन की समस्या का समाधान एकीकृत रूप से किया जाए। विस्थापन की स्थिति में इन्हें पर्याप्त भूमि, संसाधन, वित्तीय सहायता, मुआवजा तथा पुनर्वास सुविधाएं मिलें।
- वनों के साथ इनके सहजीवी संबंधों को देखते हुए इन क्षेत्रों में बैंक, स्कूल, अस्पताल, राशन–दुकान, अनाज बैंक, विद्युत सुविधाएं तथा अन्य संस्थागत लाभ इत्यादि उपलब्ध हों।
- भूमि पर इनके मालिकाना हक को सुनिश्चित करते हुए बंटाई खेती के क्षेत्र में पर्याप्त सुधार किए जाएं।
- भूमि संबंधी रिकॉर्ड बनाकर, पंचायत में उनका प्रस्तुतीकरण करके, रिकॉर्ड के अभाव में मौखिक गवाही को मानकर ऐसी व्यवस्था की जाए कि जनजातीय लोगों की भूमि का गैर–जनजातीय व्यक्तियों तक स्थानान्तरण (बेचान) न हो।
- जनजातीय लोगों की बौद्धिक संपदा का वैधानिक एवं संस्थागत प्रयासों से संरक्षण किया जाए।
- परिवर्तित परिस्थितियों में जनजातीय क्षेत्रों की भाषाएं लुप्त हो रही हैं क्योंकि उनको अनुसूचित नहीं किया हुआ है। अतः इनके लोकगीत–संगीत एवं लोक संस्कृति को बचाने हेतु जनजातीय भाषाओं (बोलियों) का संरक्षण एवं प्रलेखीकरण किया जाए।
- आदिम जनजातीय समूहों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। विशेष प्रयासों के द्वारा इनका विकास एवं कल्याण सुनिश्चित किया जाए।
- अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन को सुशासन, शांति, भाईचारा, विकास तथा कौशल निर्माण इत्यादि में सुदृढ़ किया जाए।
- नृजातीय विवरण, आदिवासी परिवेश, इनकी समस्याओं एवं विकास के संदर्भ में शोध कार्यों को बढ़ावा दिया जाए।
- इन क्षेत्रों के विकास एवं कल्याण में स्वयंसेवी संस्थाओं से सहयोग लिया जाए।

इस नीति के प्रवर्तन के पश्चात् देश में आदिवासी कल्याण के प्रयासों को न केवल व्यवस्थित स्वरूप मिला है बल्कि विकास कार्यक्रमों में तेजी भी आई है।

नवीन प्रयास

भारत सरकार द्वारा सन् 1996 में पारित पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम के माध्यम से पांचवीं अनुसूची वाले क्षेत्रों में व्यवस्थित पंचायती राज की स्थापना एवं वन क्षेत्रों में जनजातियों के अधिकारों की रक्षा का प्रयास किया गया है किंतु वन उत्पादों पर स्थानीय निवासियों का वैधानिक अधिकार नहीं था। केंद्र में सत्तारूढ़ संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार द्वारा पारित एक नए कानून "अनुसूचित जनजाति और परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2007" के माध्यम से वनभूमि तथा वास्तविक जीवन की आवश्यकताओं जैसे पत्थर और ईंधन लकड़ी पर स्थानीय निवासियों का अधिकार सुनिश्चित कर दिया गया है। पूर्व में स्थिति यह थी कि आदिवासियों को वनों में उगने वाले बांस तथा केन जैसे पेड़–पौधों पर भी अधिकार नहीं था। ग्रामसभा द्वारा एक वन अधिकार समिति का गठन इस कानून के द्वारा किया जाएगा, साथ ही उपखण्ड, जिला एवं राज्य स्तर पर भी ऐसी समितियां होंगी।

सन् 2005 में पारित राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम के अंतर्गत संचालित हो रही रोजगार योजना प्रायोगिक तौर पर देश के निर्धनतम जिलों में फरवरी, 2006 में शुरू हुई थी जिसे अप्रैल, 2008 से देश के संपूर्ण ग्रामीण जिलों में लागू कर दिया गया है। इस योजना का सर्वाधिक लाभ उन आदिवासी क्षेत्रों के निवासियों को मिला है जिनके पास रोजगार का कोई स्थायी जरिया नहीं था। इस योजना से आदिवासियों को उनके निवास स्थल से 5 किलोमीटर की परिधि में रोजगार उपलब्ध हो रहा है और साथ में इन पिछड़े क्षेत्रों में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप निर्माण कार्य भी संपन्न हो रहे हैं। भारत में महानगरीय, शहरी, कस्बाई, ग्रामीण तथा इनसे नीचे आदिवासी क्षेत्रों में जीवन– स्तर तथा विकास के मायने एवं प्रसार भिन्न–भिन्न हैं। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि भारत को कई रूपों में विकसित करने के बजाय एक सशक्त एवं आत्मनिर्भर भारत का निर्माण किया जाए। निसंदेह इसके लिए हमारे आदिवासी बंधुओं का कल्याण प्राथमिक होना चाहिए।

(लेखक राजस्थान विश्वविद्यालय में यूजीसी पोस्ट डॉक्टोरल रिसर्च फैलो हैं।)
ई–मेल : skkataria64@rediffmail.com

बहुउपयोगी मेथी की खेती

डॉ. मदन पाल

भारत में मेथी की खेती बहुत प्राचीन काल से की जाती है। इसे देश के प्रायः सभी राज्यों में उगाया जाता है। राजस्थान, गुजरात, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा एवं महाराष्ट्र मेथी उगाने वाले प्रमुख राज्य हैं, इसके अतिरिक्त इसकी खेती कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु में भी की जाती है। पत्तीवाली सब्जियों में मेथी का महत्वपूर्ण स्थान है तथा बीजीय मसालों के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में धनिया व ज़ीरा के बाद मेथी का तृतीय स्थान है। हमारे देश में मेथी की खेती 0.50 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है जिससे लगभग 0.64 लाख टन बीज का उत्पादन होता है। सन् 2005–06 में भारत से 0.12 लाख टन मेथी का निर्यात किया गया जिससे 2400 लाख रुपये मूल्य की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई।

मेथी की मुलायम हरी पत्तियों को हरी सब्जी के रूप में तथा बीज को मसाले के रूप में प्रयोग किया जाता है। मेथी की हरी पत्तियों में प्रोटीन, खनिज पदार्थ, रेशा, विटामिन 'ए' एवं 'सी' तथा बीजों में प्रोटीन, खनिजपदार्थ–मुख्यतः लोहा व कैल्शियम, तथा विटामिन 'ए' बी–2 एवं 'सी' प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त बीज में वाष्पशील तैल, स्थिर तैल, स्टेरायड यौगिक–फैनूग्रीकाइन, ट्राइगोनेलाइन, डाइओस्जेनिन, कोलाइन एवं मैलोनिक अम्ल पाये जाते हैं। सब्जी व मसाले के अतिरिक्त मेथी का अत्यधिक औषधीय महत्व भी है। इसके बीज श्लेषमक, तापहर, मूत्रल तथा पेट के विकारों में लाभकारी होते हैं। वे आर्तवजनक, कामोद्दीपक तथा प्रदाह प्रशमक (शीतकारी) भी होते हैं। इसकी पत्तियां ठंडक पहुंचाने वाली तथा क्षुधावर्धक होती हैं। कॉड लीवर ऑयल की भांति मेथी के एल्केलॉयड भी भूख बढ़ाते हैं। मेथी के पत्तों की पुटलिस बाहरी और भीतरी सूजन में लाभकारी होती हैं। मेथी की उबली हुई पत्तियों को मक्खन में तल कर पित्त–दोष में दिया जाता है। इसके बीजों का चूर्ण सिर में लगाने से बालों का झड़ना रुक जाता है तथा उनकी वृद्धि होती है। बीज में पाये जाने वाले डाइओस्जेनिन स्टेरायड का सैक्स एवं गर्भनिरोधक औषधियों में प्रयोग होता है।

देश के कुछ भागों में मेथी की हरी पत्तियों को हरे–चारे में, एवं मेथी के बीज को बिनौले के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाया जाता है, जिससे दूध देने वाले पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता बढ़ती है।

मेथी दो प्रकार की होती है–एक साधारण (देशी) मेथी तथा दूसरी कसूरी मेथी। साधारण मेथी देश भर में उगायी जाती है, लेकिन यह दक्षिण की अपेक्षा उत्तर भारत में अच्छी होती है। यह जल्दी बढ़ने वाली, तथा शाखायें सीधे ऊपर की ओर बढ़ती हैं तथा हर पत्ती के कोण पर दो–तीन सफेद फूल लगते हैं। कसूरी मेथी उत्तर–पश्चिमी ठंडे क्षेत्रों में उगाने के लिए अधिक उपयोगी है। इसकी बढ़वार धीमे होती है तथा इसके फूल–नारंगी–पीले रंग के होते हैं जो गुच्छों में लगते हैं।

हमारे देश में मेथी की औसत पैदावार काफी कम है जिसके मुख्य कारण हैः– उन्नत किस्मों के प्रमाणित बीज का उपलब्ध न होना, असन्तुलित खाद एवं उर्वरक प्रयोग तथा खेती की परम्परागत सस्य विधियां अपनाना। अतः प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक उत्पादन लेने के लिए आवश्यक है कि बुवाई के लिए अच्छी

मेथी का बीज

मेथी की हरी पत्ती व बीज का पोषक मूल्य
(प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में)

पोषक तत्व	नमी (ग्रा.)	प्रोटीन (ग्रा.)	वसा (ग्रा.)	रेशा (ग्रा.)	कार्बोहाइड्रेट्स (ग्रा.)	ऊर्जा (कि. कैलोरी)	कैल्शियम (मि.ग्रा.)	आयरन (मि.ग्रा.)	विटामिन बी–2 (मि.ग्रा.)	विटामिन सी (मि.ग्रा.)
हरी पत्ती	86.1	4.4	0.9	1.1	6.0	49	395	19.3	0.3	52
बीज	8.8	23.0	6.4	10.1	58.4	323	176	34	2.0	3.0

किस्म का प्रमाणित बीज प्रयोग किया जाए एवं उत्पादन की उन्नत सस्य विधियां अपनायी जायें।

जलवायु: मेथी ठंडे मौसम की फसल है और इसे उत्तरी भारत में रबी की फसल के रूप में उगाया जाता है। इसके पौधे कम तापक्रम एवं पाले के प्रति सहिष्णु होते हैं। कम से मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। दक्षिण भारत में मेथी को खरीफ में उगाया जाता है। इसके पौधों की बढ़वार के लिए मध्यम जलवायु तथा कम तापमान की आवश्यकता होती है। लेकिन बीज बनते समय ठंडा एवं शुष्क मौसम अच्छा होता है। साधारण मेथी की अपेक्षा कसूरी मेथी को कम तापमान की आवश्यकता होती है।

भूमि एवं खेत की तैयारी: वैसे तो मेथी को सभी प्रकार की भूमि में सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है, परन्तु पर्याप्त जीवांश युक्त अच्छे जल निकास वाली दोमट भूमि, जिसका पी. एच. मान 6–7 हो इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम होती है। अन्य फलीदार सब्जियों की तुलना में मेथी लवणीय व क्षारीय अवस्था के प्रति अधिक सहनशील मानी जाती है। अच्छी फसल के लिए भूमि भली भांति तैयार होनी चाहिए। मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई तथा देशी हल या कल्टीवेटर से 3–4 जुलाइयां करके मिट्टी को बारीक बना लिया जाता है। फिर पाटा लगाकर खेत को समतल करके, सिंचाई, की दृष्टि से सुविधाजनक आकार की क्यारियां बना ली जाती हैं।

उन्नत किस्में: मेथी की उन्नत किस्में इस प्रकार हैं:–

कसूरी मेथी: इस किस्म का विकास भारतीय कृषि अनुंसाधन संस्थान, नई दिल्ली द्वारा किया गया है। यह अपेक्षाकृत देर से तैयार होती है। पत्तियां छोटी तथा फली हसिये के आकार की होती है। इसमें 2–3 कटाई की जा सकती हैं। इस किस्म में पुष्प देर से आते हैं एवं पुष्प पीले रंग के विशेष सुगन्धयुक्त होते हैं। इसकी हरी पत्तियों की औसत उपज 70–80 कुन्तल प्रति हैक्टेयर है।

पूसा अर्ली ब्रान्चिंग: यह एक सामान्य मेथी की किस्म है, जिसे भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली से विकसित किया गया है। यह एक अधिक उपज देने वाली अगेती किस्म है। इसके फूल सफेद रंग के तथा 3–4 फूलों के गुच्छों में आते हैं। फलियां 6–8 सेमी लम्बी होती हैं। इससे 2–3 कटाई प्राप्त होती हैं तथा बुवाई से बीज बनने तक 120–125 दिन का समय लगता है।

लाम सलेक्शन–1: इस किस्म को एन.जी रंगा कृषि विश्वविद्यालय; आन्ध्र प्रदेश के क्षेत्रीय केन्द्र लाभ द्वारा स्थानीय जननद्रव्यों से चयनित कर विकसित किया गया है। इसके पौधे मध्यम ऊंचाई के और झाड़ीदार होते हैं तथा इसमें शाखायें अधिक निकलती हैं। इस किस्म से सिंचित दशा में 100–120 कुन्तल प्रति हैक्टेयर हरी पत्तियों की उपज मिल जाती है। इसे आन्ध्र प्रदेश में उगाने के लिए अनुमोदित किया गया है।

प्रभा: इसे नागपुर के स्थानीय जनन द्रव्य से विशुद्ध वंश क्रम चयन विधि द्वारा विकसित किया गया है। यह किस्म रोग एवं कीट के प्रति अवरोधी है तथा इसकी बीज क्षमता अधिक है।

को–1: यह किस्म तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर द्वारा जारी की गई है। यह किस्म 85–90 दिन में पक कर तैयार हो जाती है, इससे दाने की उपज 7–8 कुन्तल प्रति हैक्टेयर मिल जाती है। पत्ती के लिए उगाई गई फसल से 80–90 कुन्तल प्रति हैक्टेयर उपज प्राप्त हो जाती है। पौधे छोटे एवं कम समय में तैयार होने के कारण यह किस्म अन्तः फसलीकरण के लिए उपयुक्त है।

मेथी संख्या–47: इस किस्म को महाराष्ट्र कृषि विभाग द्वारा विकसित किया गया है। इसकी पत्तियां चौड़ी तथा रसीली होती हैं। इसमें विटामिन 'सी' अधिक होता है।

यू.एम. 112: यह एक सीधी बढ़वार वाली किस्म है, जिसके पौधे काफी लम्बे होते हैं। यह किस्म पत्ती तथा बीज दोनों की दृष्टि से अच्छी है। इसके बीज में डाइओसजीनिन की काफी मात्रा (7.5 मि.

ग्रा. प्रति ग्रा. बीज) पाई जाती है।

बरबरा: इस किस्म के पौधें की बढ़वार सीधी होती है। इसके बीज पीले रंग के होते हैं और उसमें 'टाइगोनेलिन' नामक अमीनो एसिड की मात्रा अधिक होती है।

कश्मीरी: यह एक अच्छी उपज देने वाली किस्म है, जो 130–140 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इस किस्म के अधिकांश गुण 'पूसा अर्लीब्रान्दिंग किस्म के समान होते हैं, परन्तु यह किस्म अपेक्षाकृत अधिक ठंड को सहन करने की क्षमता रखती है। इसके पुष्प सफेद रंग के होते हैं तथा फलियों की लम्बाई 6–8 से.मी. होती है। यह किस्म पर्वतीय क्षेत्रों के लिए सब्जी व बीज दोनों की दृष्टि से उपयोगी है।

हिसार मेथी 346: इस किस्म को चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से विकसित किया गया है। यह किस्म मृदुरोमिल आसिता के प्रति अवरोधी है।

हिसार मेथी 350: इस किस्म को भी चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से एल.एम. ई. 46–1 किस्म से एकल पौध चयन विधि से विकसित किया गया है। यह किस्म चूर्णिल आसिता के प्रति अवरोधी है जब कि मृदुरोमिल आसिता के प्रति सहिष्णु है।

राजेन्द्र क्रान्ति: यह किस्म राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, समस्तीपुर, बिहार के धोली केन्द्र द्वारा विकसित की गई है। इसके पौधे मध्यम ऊंचाई के झाड़ीनुमा होते हैं। यह किस्म 120 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इससे 12–14 कुन्तल दाना प्रति हैक्टेयर प्राप्त हो जाता है।

बुवाई का समय: उत्तर–भारत के मैदानी भागों में बीज के लिए देशी मेथी की बुवाई का उचित समय अक्टूबर के प्रथम पखवाड़े से नवम्बर के प्रथम पखवाड़े तक होता है। जबकि हरी पत्ती के उद्देश्य से इसे सितम्बर–अक्टूबर से लेकर जनवरी–फरवरी तक थोड़े–थोड़े अन्तराल पर लगाया जाता है, जिससे इसकी उपलब्धता बराबर बनी रहे। देश के दक्षिणी राज्यों कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु में मेथी को खरीफ और रबी दोनों मौसम में उगाया जाता है। खरीफ फसल की बुआई जून–जुलाई और रबी फसल की बुआई सितंबर–दिसंबर तक की जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में मेथी को कम और मध्यम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में जुलाई से अक्टूबर तथा अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में मार्च–मई तक बोया जाता है। कसूरी मेथी की बुवाई दिसम्बर में की जाती है।

मेथी की फसल पुष्पावस्था में

बीज दर: एक हैक्टेयर खेत की बुवाई के लिए साधारण मेथी का 25–30 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है, जबकि कसूरी मेथी के लिए 15–20 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है।

बीजोपचार: मेथी एक दलहनी फसल है। अतः अच्छी पैदावार लेने के लिए इसकी बुवाई से पहले बीज को राइजोबियम कल्चर एवं पी.एस.बी. (फास्फेट विलेयकारी सूक्ष्म जीव) कल्चर से अवश्य उपचारित करना चाहिए। जिसके लिए एक हैक्टेयर पर लगने वाले बीज पर एक–सवा लीटर पानी छिड़क कर बीज को गीला कर लेते हैं फिर उसके ऊपर एक–एक पैकेट (500 ग्रा.) राइजोबियम कल्चर तथा पी.एस.बी कल्चर को डालकर इसे हाथ से बीज में मिला देते हैं। कल्चर मिलाने की क्रिया इस प्रकार से करें कि सभी बीजों पर कल्चर की एक समान पर्त चढ़ जाये, फिर उपचारित बीजों को छाया में सुखाने के लिए एक घंटे के लिए रख देते हैं, सुखाने के तुरन्त बाद बुवाई कर देते हैं।

बुवाई की विधि: मेथी की बुवाई दो प्रकार से की जा सकती है– छिटकवां विधि व पंक्तियों में। छिटकवां विधि में बीज को बुवाई के लिए तैयार खेत में समान रूप से बिखेर देते हैं तथा हल्की जुताई

करके या रैक चला कर बीज को मिट्टी की पतली तह से ढक देते हैं।

पंक्तियों में बुवाई: अन्तःसस्य क्रियाओं को सुचारू रूप से करने के लिए पंक्तियों में बुवाई करना उपयुक्त होता है। बीज की बुवाई 25–30 से.मी. की दूरी पर पंक्तियों में 2–3 से.मी की गहराई पर करते हैं। यह ध्यान रहे कि बीज बोने से पहले खेत में पर्याप्त नमी रहनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक: मेथी दलहनी फसल है और यह वातावरण से नाइट्रोजन को लेकर मृदा में संचित करती है। अतः इसके लिए बहुत अधिक खाद एवं उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती है। फिर भी अधिक उपज, शीघ्र बढ़वार, कोमल व रसीली पत्तियों के लिए मृदा में पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्वों का होना अनिवार्य है। इसके लिए खेत तैयार करते समय 15–20 टन भली–भांति सड़ी गोबर की खाद मिट्टी में मिला देते हैं। बुवाई के समय 20–25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से बेसल ड्रैसिंग के रूप में देते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कटाई के पश्चात् 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर की दर से टॉपड्रैसिंग करते हैं।

पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग: मेथी के पौधों पर एसकोर्बिक अम्ल के 250–450 पी.पी.एम. के सांद्रण के घोल का छिड़काव करने से पौधों की बढ़वार, प्रति पौध पुष्पों की संख्या तथा बीजों की संख्या तथा आकार पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जिब्रैलिक अम्ल का 10–100 पी.पी.एम. सांद्रण के घोल का फसल पर छिड़काव करने से पौधें की ऊंचाई बढ़ती है तथा प्रति पौध पत्तियों की संख्या में भी वृद्धि होती है।

जल–प्रबन्धन: मेथी में अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। यदि बुवाई के समय खेत में नमी की मात्रा कम हो तो तुरन्त सिंचाई कर देनी चाहिए। इसके बाद आवश्यकतानुसार प्रत्येक कटाई के बाद एक सिंचाई करना आवश्यक होता है। बीज वाली फसल में एक सिंचाई फूल आते समय अवश्य करनी चाहिए। इससे फूलों को पाले के प्रभाव से बचाया जा सकता है। इसके बाद की सिंचाई जब फलियों में दाने बनने शुरू हो जाएं तब करनी चाहिए। इस प्रकार मेथी में कुल 8–10 सिंचाई की आवश्यकता होती है।

खरपतवार प्रबन्धन: मेथी की बढ़वार प्रारम्भिक अवस्था में कुछ धीमी होती है। अतः फसल की प्रारम्भिक अवस्था में 4–5 सप्ताह तक निराई–गुड़ाई करके खरपतवार निकालते रहना चाहिए अन्यया फसल की पैदावार व गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। निराई–गुड़ाई करने से खरपतवार तो नष्ट होते ही हैं साथ ही भूमि में वायु संचार भी बना रहता है जिससे पौधों की वृद्धि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। मेथी में सबसे अधिक समस्या सेंजी नामक खरपतवार से होती है, क्योंकि इसकी पत्तियां मेथी की तरह होती हैं। खेत में सेंजी के पौधों को पहचान कर हाथ से या खुर्पी–कसौले की मदद से निकालते रहना चाहिए।

फसल चक्र एवं अन्तःसस्य फसलें: मेथी कम समय में तैयार होने वाली द्विबीज पत्री फसल है। अतः इसे विभिन्न सब्जियों के साथ फसल चक्र में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। खरीफ की सब्जियों जैसेः टमाटर, मिर्च, लोबिया एवं कद्दू वर्गीय सब्जियों के उगाने के बाद इसे सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसी प्रकार मेथी की फसल तैयार होने के बाद अन्य ग्रीष्म ऋतु की सब्जियां उगायी जा सकती हैं। मेथी को विभिन्न फसलों या सब्जियों के साथ अन्तः फसल के रूप में आसानी से उगाया जा सकता है। उत्तर भारत में इसे आलू, रबी मक्का आदि के साथ तथा दक्षिण भारत में मूंगफली

मेथी की फसल की पुष्पावस्था से पूर्व की अवस्था

के साथ अन्तः फसल के रूप में उगाया जाता है।

कीट व उनका नियंत्रण

माहू या चैंपा एफिडः इसकी प्रमुख समस्या बीज वाली फसल में आती है। मेथी की फसल में इस कीट का आक्रमण मुख्यतः फसल में पुष्प आते समय व फली बनते समय होता है। ये छोटे–छोटे कीट पौधों की पत्तियों, फलियों व अन्य भागों से रस चूसकर पौधे को कमजोर बना दते हैं, जिससे उपज में भारी कमी आ जाती है।

नियंत्रणः इसके नियंत्रण के लिए फसल पर 0.03 प्रतिशत डाइमेथोएट (30 ई.सी) या मिथाइल डिमेटान (25 ई.सी.) का 700–800 लीटर पानी में घोल बना कर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

कटाईः देशी मेथी के पौधे बुवाई के लगभग 20–25 दिन बाद, जब उनमें चार–पांच पत्तियां बन जाती हैं, पहली कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। लेकिन कसूरी मेथी के पौधों की प्रारम्भिक बढ़वार धीमी होने के कारण इसकी पहली कटाई बुवाई के 30–35 दिन बाद ही सम्भव हो पाती है।

मेथी की पत्तियों की कटाई भूमि की सतह से लगभग 3–4 से. मी. की ऊंचाई से करनी चाहिए। जिससे फुटाव न कट पाये। इसके बाद 15–20 दिनों के अन्तराल पर कटाई करते रहना चाहिए व कटाई में देरी करने से मेथी की पत्तियां कड़वी हो जाती हैं। यदि बीज बनाना हो तो 2–3 कटाइयों के बाद पौधों को बढ़ने के लिए छोड़ देना चाहिए। बीज हेतु उगायी गई फसल की कटाई तब करनी चाहिए जब लगभग 70 प्रतिशत फलियां पीली पड़ जाय। कटाई के बाद छोटे–छोटे बण्डल बना लेते हैं और 4–5 दिन तक धूप में सुखाकर बीज को डण्डों से पीटकर या थ्रैसर द्वारा पौधों से अलग कर लेते हैं।

उपजः मेथी की उपज किस्म, मौसम तथा फसल प्रबन्धन आदि कारकों पर निर्भर करती है। उन्नत सस्य विधियां अपनाकर मेथी की खेती की जाय तो हरी पत्तियों की उपज यदि बीज न लिया जाय तो देशी मेथी की 70–80 कुन्तल तथा कसूरी मेथी की 90–100 कुन्तल प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है, और यदि फसल केवल बीज के लिए उगायी जाय तो देशी मेथी से 18–20 कुन्तल तथा कसूरी मेथी से 10–11 कुन्तल बीज प्रति हैक्टेयर मिल जाता है। दोहरे प्रयोजन से उगायी गई देशी मेथी की फसल से 30–35 कुन्तल हरी पत्ती तथा 12–15 कुन्तल बीज प्रति हेक्टेयर, जबकि कसूरी मेथी से 40–45 कुन्तल हरी पत्ती तथा 5–6 कुन्तल बीज प्रति हैक्टेयर मिल जाता है।

हरी पत्ती के लिए मेथी की कटाई योग्य अवस्था

(लेखक भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के सस्य विज्ञान संभाग में तकनीकी अधिकारी हैं।)
ई–मेलः
mandanpal_sirohi@yahoo.com

कुरुक्षेत्र मंगवाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड-4, तल-7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

संतरे की खेती को समर्पित युवा काश्तकार

घनश्याम वर्मा

देश में संतरे की खेती के लिए प्रसिद्ध महाराष्ट्र राज्य के नागपुर के बाद राजस्थान के झालावाड़ जिले का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। जिले में प्रति वर्ष करीब बीस हजार हेक्टेयर भू–भाग पर दो लाख टन संतरे की पैदावार होती है। जिले में कई गांव तो ऐसे हैं, जहां के लगभग 90 प्रतिशत काश्तकार संतरा उत्पादक ही हैं। यहां यह कहना भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि कृषि जगत में संतरे की खेती ने ही झालावाड़ जिले को विशेष पहचान दी है।

जिले की झालरापाटन पंचायत समिति के अन्तर्गत संतरा उत्पादक ग्रामों में जूनाखेड़ा, बड़ौदिया, दित्याखेड़ी एवं मानपुरा का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। जूनाखेड़ा के संतरा उत्पादक काश्तकारों में ही एक प्रगतिशील युवा काश्तकार है पुरुषोत्तम पाटीदार, जो करीब बाईस वर्षों से संतरे की खेती कर रहे हैं। वर्ष 1983 में आठवीं तक की स्कूल शिक्षा पूरी करने के बाद से वह निरन्तर खेतीबाड़ी कर रहे हैं। पहली बार उन्होंने सन् 1986 में एक हेक्टेयर में संतरे का बगीचा लगाकर 320 पेड़ लगाए। दस वर्ष बाद 1996 में 400 पेड़ और लगाए थे। संतरे के पेड़ लगाने का क्रम आगे बढ़ता रहा। सन् 2000 में 850 और इस वर्ष 2008 में 350 नये पेड़ लगाने के बाद अपनी कुल 9 हेक्टेयर भूमि में से 7 हेक्टेयर में संतरे के करीब दो हजार पेड़ इनकी स्थायी आमदनी के स्रोत बन चुके हैं।

युवा काश्तकार पुरुषोत्तम पाटीदार बहुत सीधे–सादे सरल व्यक्तित्व के धनी हैं। संतरे की खेती के प्रति इनका गहरा रूझान है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि संतरे की खेती को यह समर्पित भाव से करते हुए इससे अच्छी आय प्राप्त करने में सफल रहे हैं। इनके बगीचों में सालाना 12 टन संतरा पैदा होता है, जिनकी बिक्री से करीब तीन लाख रुपये की आय होती है और खर्चा निकालने के बाद करीब ढाई लाख की बचत भी हो जाती है।

उन्नतशील काश्तकार पुरुषोत्तम पाटीदार संतरे की खेती के अलावा पांच वर्षों से स्वयं की पौधशाला में उन्नत किस्म के संतरे के पौधे तैयार कर उनकी बिक्री से भी अतिरिक्त आय प्राप्त कर रहे हैं। इफको फर्टिलाइजर कंपनी ने 2003 में जिले के कुछ प्रगतिशील जिज्ञासु काश्तकारों को नागपुर ले जाकर संतरे की खेती का दिग्दर्शन करवाया था, उनमें पुरुषोत्तम भी शामिल थे। नागपुर से आने के बाद 2004 में उन्होंने स्वयं के खेत पर संतरे के 20 हजार पौधे तैयार किए। पुनः अगले वर्ष 30 हजार और 2006 में 50 हजार पौधे तैयार कर उनको उचित दर पर किसानों को बेच करके अच्छी आय प्राप्त की।

श्री पुरुषोत्तम ने बताया कि 2006 में वह राष्ट्रीय बागवानी मिशन से भी जुड़ गये थे। तब संतरे की पौध तैयार करने के लिए डेढ़ हेक्टेयर में किसान नर्सरी लगाने हेतु उन्होंने मिशन की योजनान्तर्गत ओरियंटल बैंक ऑफ कॉमर्स की झालरापाटन शाखा से तीन लाख रुपये का ऋण मंजूर करवाया था। निजी नर्सरी के लिए ग्रीन हाउस भी तैयार किया, जिसमें 100 गुना 50 फीट आकार का शेड नेट लगवाया। इस प्रयोजन के लिए बागवानी मिशन से उन्हें डेढ़ लाख रुपये का अनुदान प्राप्त हुआ था।

संतरा पौधशाला में मातृवृक्षों पर बडिंग करते हुए पुरुषोत्तम पाटीदार

उन्होंने बताया कि उनकी स्वयं की अम्बिका किसान नर्सरी में 2006 में तैयार एक लाख पौधों में से उद्यान

विभाग को 71 हजार पौधे बेचकर 6.39 लाख रुपये की आय प्राप्त की थी। शेष बचे पौधों को उन्होंने अन्य जरूरतमंद किसानों को उचित दर पर बेच दिया था। वर्ष 2007 में रूट स्टॉक से तैयार किए गए क़रीब 70 हजार संतरे के पौधे उनके पास उपलब्ध हैं, जिन्हें इस वर्ष बेचना है। गत वर्ष उन्हें पौधों की बिक्री से 8 लाख 60 हजार रुपये की आय हुई थी, जिसमें से करीब आधी राशि खर्च निकालने के बाद इतनी ही राशि की बचत हुई थी। संतरे की नर्सरी से अब प्रति वर्ष उन्हें 4–5 लाख रुपये की निरन्तर आय प्राप्त होती रहेगी। बैंक ऋण में से अब तक एक लाख रुपये की राशि का भुगतान भी वह कर चुके हैं।

संतरे की खेती के साथ अन्य फसल उगाकर दोहरा लाभ ले सकते हैं काश्तकार

बगीचों में पैदा होने वाले संतरे की उपज एवं नर्सरी में तैयार पौधों की बिक्री से सालाना अच्छी आमदनी प्राप्त करने वाला यह प्रयोगधर्मी काश्तकार बगीचों के बीच के खाली स्थान का उपयोग अन्य प्रकार की उपज लेकर करता है। रबी में गेहूं, धनिया और खरीफ में सोयाबीन की पैदावार ली जाती है। तीन साल पूर्व एक अलग ब्लॉक में आंवले के 80 पौधे लगाए थे, जिनमें इस वर्ष अच्छी किस्म के आंवले की पैदावार ले सकेंगे। डेढ़ बीघा के एक अन्य ब्लॉक में लहसुन की पैदावार भी लेते हैं। श्री पाटीदार इस वर्ष मिशन के माध्यम से आयोजित एक्सपोजर विजिट पर तलेगांव (महाराष्ट्र) भी होकर आए हैं। वहां उन्होंने संतरे की उन्नत खेती और बेहतर कृषि प्रबंधन की तकनीक सीखकर अपने कृषि ज्ञान को आदिनांक किया है।

संतरा उत्पादक ग्राम जूनाखेड़ा के करीब दो सौ काश्तकार ऐसे हैं, जो संतरे की खेती के प्रति पूर्ण समर्पित हैं। इसी गांव के कई लोगों ने भी गुणवत्तापूर्ण संतरे का उत्पादन कर संतरे की खेती में अपनी ख़ास पहचान बनाई है। उल्लेखनीय है कि गत वर्ष 2007 में अकेले जूनाखेड़ा ग्राम के संतरा उत्पादक किसानों ने करीब दो करोड़ रुपये के संतरों की बिक्री की थी। इस प्रगतिशील कृषक ने पहली बार इस वर्ष सरकारी कृषि फार्म के 5 हेक्टेयर में तुलसी की खेती के लिए मुनाफा काश्त पर लेकर बुवाई भी कर दी है, जिसके अनुकूल नतीजे प्राप्त होने की उन्हें पूरी उम्मीद है।

(लेखक बूंदी में सूचना और जनसंपर्क अधिकारी हैं।)

हमारे आगामी अंक

जनवरी, 2009 – ग्रामीण विकास योजनाएं।

फरवरी, 2009 – किसानों के विकास की योजनाएं।

मार्च, 2009 – महिलाओं की कल्याणकारी योजनाओं पर आधारित होगा।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास, परिवहन, सड़कें, बिजली, कृषि व स्वास्थ्य से संबंधित लेख भी इनमें शामिल किए जाएंगे । उपरोक्त विषयों पर सारगर्भित लेख (आम बोलचाल की भाषा में) व फोटो हमें भेजे जा सकते हैं । पत्रिका के प्रकाशन की तिथि आगामी माह से तीस दिन पूर्व होती है। अतः प्रकाशन सामग्री कम से कम 45 दिन पूर्व हमें मिल जानी चाहिए।

The McGraw-Hill Companies

टाटा मैक्ग्रॉ-हिल

UPSC टॉपर्स की पसंद

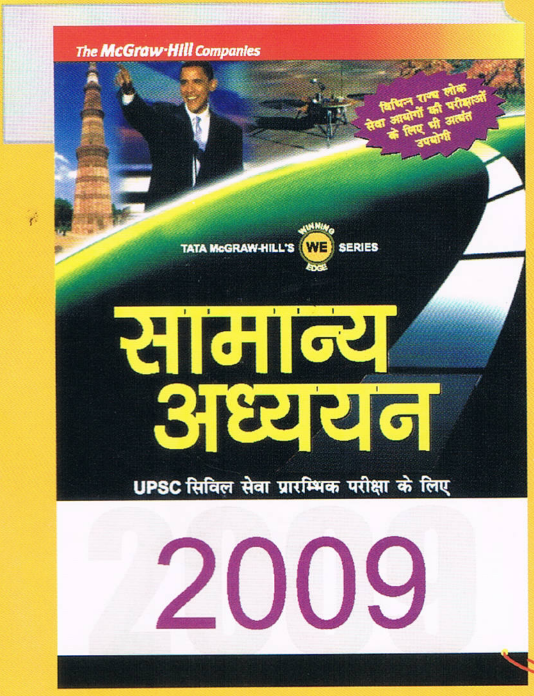

945/-

भौगोलिक मॉडल्स — हुसैन • सिंह

विश्व इतिहास — पंत

भारत में सामाजिक समस्याएँ

भारत 2008 — सिंह • कांत

राजनीति विज्ञान — अरोड़ा

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

195/- 175/- 315/-

195/- 295/- 375/-

220/- प्राचीन भारत का नवीन मूल्यांकन

21वीं शताब्दी में लोक प्रशासन 220/-

165/- अंतर्राष्ट्रीय संगठन

भारत की राज्यव्यवस्था — लक्ष्मीकांत 330/-

215/- 21वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध

भारत का इतिहास 525/-

175/- समसामयिकी

खुल्लर — भूगोल — सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा हेतु 495/-

205/- मिश्रा — निबंध मंजूषा

205/- प्रशासनिक विचारधाराएँ

लोक प्रशासन — लक्ष्मीकांत 465/-

समाजशास्त्र 350/-

Mc Graw Hill Education

McGraw-Hill Education (India) Ltd.

Noida : B-4, Sector-63, Noida - 201 301 Ph.: 91-120-4383400 Fax : 91-120-4383401 E-Mail : vijay_sarathi@mcgraw-hill.com

Bhubaneswar : Ph.: 0674-3202034, 2595228 E-mail : tirtha_mahanta@mcgraw-hill.com

Kolkata : Ph. : 033-32487979, 32487980 E-Mail : eshita_debsarma@mcgraw-hill.com

Mumbai : Ph. : 022-65025723, 65025725 E-Mail : kj_waghchhipawalla@mcgraw-hill.com

Pune : Ph. : 020-24337604 Fax: 020-24433976 E-Mail : sharad_shinde@mcgraw-hill.com

KH-12/08/02

आर. एन./708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)–05/3164/2006–08
आई.एस.एस.एन. 0971–8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)–55/2006–08

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2006-08
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2006-08
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

प्रकाशक और मुद्रक : वीना जैन, अपर महानिदेशक (प्रभारी), प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली-110 020 : वरिष्ठ संपादक : कैलाश चन्द मीना